प्रकाशक :
साहित्य मन्दिर
४/१६ रूपनगर
दिल्ली—६

भूमिका

हिन्दी कवियों के परिचय के सम्बन्ध में हिन्दी में अनेक पुस्तकें विद्यमान हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य केवल छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को हिन्दी के अत्यन्त प्रमुख कवियों के जीवन-वृत्तान्त तथा उनके काव्य की मोटी-मोटी विशेषताओं से परिचित कराना ही है। क्योंकि यह पुस्तक पंजाब विश्व-विद्यालय की हिन्दी रत्न, अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा तथा मैट्रिक परीक्षा के स्तर को ध्यान में रखकर लिखी गई है, इसलिए इसमें काव्य की आलोचना पर कम ध्यान रखा गया है और कवियों के जीवन-परिचय -पर अधिक। कवियों की विशद आलोचना 'हिन्दी कवियों का आलोचनात्मक अध्ययन' में की गई है।

इस पुस्तक को विद्यार्थियों के लिये अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने का हमने प्रयत्न किया है, फिर भी यदि कोई त्रुटियां रह गई हो, तो विद्वान् पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने सुझाव हमें भेजें, जिससे अगले संस्करण में त्रुटियां को दूर किया जा सके।

विषय-सूची

कबीर

कबीरदास जी का जन्म विक्रम संवत् १४५५ में ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को हुआ माना जाता है। इनके जन्म के बारे में यह दोहा प्रसिद्ध है :

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठये।
जेठ सुदी बरसायत को पूरणमासी प्रकट भये॥

इनके जन्म के सम्बन्ध में लोगों में मतभेद है। कोई कहते हैं कि ये नीरू नामक जुलाहे के पुत्र थे। कुछ अन्य लोगों का कहना है कि काशी में एक ब्राह्मण रहता था, उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर स्वामी रामानन्द जी ने उसकी विधवा कन्या को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था। इस आशीर्वाद के फलस्वरूप उसे एक पुत्र हुआ, जिसे लोक लाज के कारण वह लहरतारा नामक तालाब के पास फेंक आई। इस पड़े हुए बालक को नीरू नामक एक जुलाहा उठा ले गया और उसने वह बालक ले जाकर अपनी पत्नी को दे दिया, जिसका नाम नीमा था। ये नीमा और नीरू ही कबीरदास जी के माता पिता कहलाये। नीरू और नीमा मुसलमान थे, परन्तु कबीर का बचपन से ही हिन्दू धर्म के प्रति प्रेम था। वे 'राम राम' जपते थे और माथे पर तिलक भी लगाया करते थे।

कबीर की पत्नी का नाम "लोई" था। इनके पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। कमाल से कबीर बहुत प्रसन्न नहीं थे। तभी उन्होंने लिखा :

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।

रामानन्द जी ने यद्यपि नीच जाति के हिन्दुओं को भी ईश्वर-भक्ति का अधिकार प्रदान किया था, परन्तु कबीर जी मुसलमान के

घर में पले थे, इसलिये शायद रामानन्द जी ने उन्हें अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। पर कबीरदास उनके शिष्य बनना चाहते थे। कहा जाता है कि एक दिन वे सवेरा होने से पहले ही पंचगंगा घाट की सीढियों पर जाकर लेट गये। रामानन्द जी वहां नित्य स्नान करने आया करते थे। अंधेरे में उनका पांव कबीर से छू गया और वे चौंक कर 'राम राम' बोल उठे। कबीर ने इस 'राम' नाम को ही गुरु मन्त्र मान लिया और वह अपने आप को रामानन्द जी का शिष्य मानने लगे।

कबीर और शेख तकी——मुसलमान कबीर पंथी शेख तकी को कबीर का गुरु मानते हैं। शेख तकी कबीर के समकालीन थे, और लगता है कबीर से उनकी भेंट भी होती रहती थी। कबीर ने अपनी कविता में उनके नाम का भी उल्लेख किया है। पर जहाँ भी कबीर ने शेख तकी का नाम लिया है, वहाँ वैसा आदर प्रदर्शित करते हुए नहीं लिया, जैसा गुरु के लिये प्रदर्शित करना उचित है। बल्कि ऐसा लगता है, जैसे वह शेख तकी को ही शिक्षा देना चाह रहे हों। शेख तकी कबीर के प्रतिद्वन्द्वी साधक थे, जिनसे कबीर का विचार विमर्श चलता रहता था। कबीर उन्हें अपने से बड़ा या अधिक पहुँचा हुआ मा को तैयार न थे। हाँ, रामानन्द जी को वह अवश्य गुरु मानते क्योंकि उन्होंने रामानन्द जी का नाम अपनी रचनाओं में बड़े आ से लिया है। एक जगह तो उन्होंने गुरु को भगवान से भी बड़ा बना दिया है :

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, का के लागों पायं।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

कबीरदास का स्वर्गवास संवत् १५७५ में मगहर में हुआ। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है :

संवत् पन्द्रह सौ पचहत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादसी रल्यौ पौन में पौन॥

उन दिनों मगहर में प्राणत्याग करना अशुभ समझा जाता था। लोगों का विश्वास था कि मगहर में मरने वाला गधा बनता है। सिकन्दर लोदी से विरोध कर लेने के कारण कबीर को मगहर जाना पड़ा। परन्तु वह जन्म भर अन्ध विश्वासों का खंडन करते रहे थे, इसलिये उन्हें मगहर में प्राण त्यागने पर क्या दुःख होना था? उनके लिये मगहर और काशी एक समान थे।

कबीरदास जी का स्थान हिन्दी के भक्त कवियों में बहुत ऊंचा है। इनकी भक्ति निर्गुण ब्रह्म की भक्ति थी और वह भी ज्ञान-प्रधान भक्ति। हिन्दी साहित्य में निर्गुण भक्ति धारा की ज्ञानमार्गी शाखा के ये सबसे बड़े कवि हैं। पहले इन्होंने दशरथ पुत्र 'राम' की भक्ति प्रारम्भ की थी; परन्तु बाद में इनके राम निर्गुण और निराकार पर-ब्रह्म राम हो गये। कबीर ने परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध अनेक रूपों में जोड़ा है। कहीं तो उन्होंने अपने आप को परमात्मा की 'पत्नी' बताया है; कहीं उन्होंने परमात्मा को 'माता' और अपने आप को उसका 'बालक' बताया है और कहीं विनय के वशीभूत होकर इन्होंने अपने आप को 'राम का कुत्ता' कहा है।

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाउं॥

इस प्रकार कबीर अनेक रूप में परमात्मा की भक्ति करते दिखाई पड़ते हैं।

कबीर की रचनाओं में हमें रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। रहस्यवादी रचनाएं वे कहलाती हैं, जिनमें ईश्वर से मिलने के लिए आत्मा की विकलता अथवा मिलने के सुख का वर्णन होता है। कबीर की रचनाओं में परमात्मा से मिलने के लिए आत्मा की आतुरता अनेक स्थानों पर बड़े तीव्र और सुन्दर रूप में दिखाई पड़ती है। कहा जाता है कि विश्व कवि रवीन्द्रनाथ भी कबीर की कविताओं से बहुत प्रभावित थे।

कबीर की रचनाएं—कबीर की रचनाएं तीन रूपों में प्राप्त होती हैं। १. रमैनी, २. सबद और ३. साखी। 'साखी' शब्द साक्षी शब्द से बिगड़ कर बना है। इसका अर्थ है—'आँखों देखी हुई अथवा भली प्रकार समझी हुई बात।' कबीर की ये साखियाँ दोहों में लिखी गई हैं और इनमें ज्ञान और भक्ति के उपदेशों का संग्रह है। 'रमैनी' और 'शब्द' गाये जाने वाले गीतों के रूप में हैं। इन गीतों में अनेक स्थानों पर बड़ी सुन्दर भावनाएं प्रकट हुई हैं।

कबीर ने कुछ उलटबांसियाँ भी लिखी हैं। ये उलटबांसियाँ पहले पहल सुनने में तो चौंकाने वाली और निरर्थक प्रतीत होती हैं, परन्तु जब उनका गूढ़ार्थ समझा दिया जाता है, तो वे सार्थक लगने लगती हैं। इनकी उलटबांसियों के दो एक उदाहरण ये हैं—

पानी में पावक बरै, अन्धहि आंखिन्ह सूझै।

या गाय तो नाहर को धरि खायो, हिरना खायो चीता॥ इत्यादि

जिस समय कबीर विद्यमान थे, उस समय हमारा समाज अनेक प्रकार की रूढ़ियों और पाखंडों से ग्रस्त था। तरह-तरह के दिखावटी विधि विधान जैसे तीर्थयात्रा, उपवास, पूजा, नमाज, रोजा इत्यादि आडंबर हिन्दू और मुसलमान दोनों के ही समाजों में चलते थे। कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही उनके बाहरी आडम्बरों के लिए फटकारा और मन की पवित्रता पर अधिक बल दिया। कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक दूसरे के निकट लाने की चेष्टा की। उन्होंने मनुष्य मात्र को समान समझने का उपदेश दिया। कबीर ने अहिंसा का भी उपदेश दिया। उन्होंने मुसलमानों द्वारा गौ और बकरी की हत्या करने को धर्म विरुद्ध बतलाया। कबीर ने इन पुरानी रूढ़ियों पर से लोगों की श्रद्धा हटाने के लिए जगह-जगह इन रूढ़ियों की, और इनका प्रचार करने वाले पण्डितों और मुल्लाओं की हंसी भी उड़ाई है।

कबीरदास को पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिला था। परन्तु

विद्वानों का सत्संग उन्होंने काफी किया था और सुन-सुन कर ही अनेक शास्त्रों तथा धार्मिक बातों का ज्ञान प्राप्त किया था। उनकी रचनाओं में हमें वेदान्त के मायावाद, इस्लाम के एकेश्वरवाद तथा वैष्णवों के अहिंसा तथा प्रपत्तिवाद (परमात्मा की शरण में जाना) के दर्शन होते हैं। उन्होंने अनेक धर्मों और मतों का तत्व इकट्ठा कर के अपना एक नया सम्प्रदाय चलाया था। अब भी कबीर मत को मानने वाले कबीरपन्थी इस देश में काफी संख्या में विद्यमान हैं। कबीर का प्रभाव शिक्षित जनता पर तो बहुत नहीं पड़ा, परन्तु अशिक्षित और अनपढ़ लोगों पर आपके उपदेशों का गहरा असर पड़ा। वस्तुतः कबीर ने अपने काल के दलितों और शोषितों को उस समय की रूढ़ियों की शृङ्खलाओं से मुक्त किया और उनमें आत्म सम्मान का भाव जगाया।

कबीर के विचार—कबीर का कथन है कि यह संसार माया का खेल है। माया के फेर में पड़ कर आत्मा परमात्मा को भूल बैठता है। परन्तु माया-जाल को तोड़ कर परमात्मा से मिले बिना उसे शान्ति किसी तरह नहीं मिल सकती। माया के इस जाल को तोड़ने का उपाय केवल सद्गुरु की कृपा से ही मालूम हो सकता है। सद्गुरु की कृपा बिना परमात्मा का दर्शन होना बहुत कठिन है। कंचन और कामिनी मनुष्य को माया के फेर में फंसाये रखते हैं। जो इनको छोड़ देता है, उसका तो उद्धार हो जाता है; पर जो इनके पीछे पड़ा रहता है, उसका उद्धार होना मुश्किल है।

परमात्मा के दर्शन के लिए सच्चे प्रेम की आवश्यकता है। जिसके हृदय में यह प्रेम जाग उठता है, उसे परमात्मा के दर्शन किये बिना कभी चैन पड़ ही नहीं सकती।

कबीर दरिद्र थे; परन्तु उन्हें स्वाधीन और अपमानरहित जीवन ही प्रिय था। वह कहते हैं :

खिचड़ी मीठी खांड है, मांहि पड़ै टुक लूण।
पेड़ा पूरी खाय कर, जाण बंधावें कूण॥

इस यौवन और वैभव का अभिमान मनुष्य को कभी न करना चाहिए; क्योंकि ये नश्वर हैं। सामान्य लोगों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े सम्राटों का वैभव भी टिक नहीं सका :

सातों सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
वे मन्दिर खाली परे, बैसन लागे काग॥

सब से बड़ा लाभ यही है कि मनुष्य-जन्म पा कर आत्मा किसी प्रकार परमात्मा का दर्शन कर सके।

कबीर कवि या उपदेशक——कबीर ने कविता काव्य का चमत्कार दिखाने के लिए नहीं लिखी। उन्होंने तो अपने हाथ से कभी कागज और स्याही छूने की भी कोशिश नहीं की थी। बाद में उनके शिष्य धर्मदास ने उनकी बानियों का संग्रह कर दिया। कबीर ने जो कुछ कहा, वह अपने भक्ति सम्बन्धी और ज्ञान सम्बन्धी विचारों को प्रकट करने के लिए। कबीर अपने समय के महान् समाज सुधारक थे, इसलिए उनकी रचनाओं में उपदेश अधिक होने स्वाभाविक ही हैं। कबीर की रचनाएं अधिकांशतः उपदेश प्रधान और खंडन प्रधान हैं। उन्होंने जहाँ तहाँ अपने विरोधियों की खिल्ली उड़ाई है। उनकी कुछ रचनाओं में हठयोग के पारिभाषिक शब्द और हठयोग की साधना पद्धतियों का भी वर्णन मिलता है। सम्भवतः इस प्रकार की रचनाएं उन्होंने लोगों पर यह रौब जताने के लिए लिखी होंगी, कि वे भी योग और साधना की बातों को खूब अच्छी तरह समझते हैं। उस काल [illegible] कुंडलिनी, कमल, चक्र, नाद, विन्दु इत्यादि शब्द हठयोगियों [illegible] साधना में बहुत प्रचलित थे। चाहे योग साधन का मार्ग बताने [illegible] दृष्टि से अथवा उपदेश की दृष्टि से इन रचनाओं का कितना ही म[illegible] क्यों न हो, परन्तु काव्य की दृष्टि से इनका महत्व बहुत थोड़ा है।

परन्तु कबीर की रचना सब जगह उपदेशात्मक नहीं है। कहीं-[illegible] उनकी रचनाओं में भावों का तीव्र आवेश और भक्तों की वि[illegible]

सुन्दर रूप में पाई जाती है। ऐसी रचनाएं रसात्मक हैं। उनमें शान्त रस पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। कवित्व की दृष्टि से भी कबीर की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनकी अपनी विशिष्ट शैली है और बात को कहने का ढंग चुटीला और प्रभावशाली है। उनकी रचनाओं में काव्य का सौंदर्य बढ़ाने वाले उपमा, रूपक, विरोधाभास इत्यादि अलंकारों का प्रयोग काफी मिलता है। कबीर की उलटबांसियाँ जनता को मुख्य रूप से इसलिए आकृष्ट कर पाईं, क्योंकि उनमें विरोधाभास का चमत्कार था।

कबीर की भाषा—कबीर ने घूम फिर कर अनेक विद्वानों का सत्संग किया था, इसलिए उनकी भाषा में कई ढंग की मिली जुली भाषा पाई जाती है। इस भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहा जाता है। उनकी भाषा बाद में आने वाले कवियों की भाषा की भांति परिष्कृत और व्यवस्थित नहीं है। फारसी, पंजाबी और राजस्थानी भाषाओं के शब्द भी उनकी रचनाओं में काफी मिलते हैं और जहाँ तहाँ पूर्वी हिन्दी के शब्द भी मिल जाते हैं। वस्तुतः कबीर ने तो अपने मन की बात श्रोताओं तक पहुंचानी थी। उसके लिए जो भी शब्द उन्हें उपयुक्त जंचे, उनका उन्होंने निस्संकोच प्रयोग कर लिया। उन्होंने यह देखने की कोशिश नहीं की कि वे किस भाषा के हैं और उनसे भाषा का स्वरूप बनता है, या बिगड़ता है।

कबीर का हिन्दी साहित्य में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यों तो उनसे पहले भी वीरगाथा काल में हिन्दी में अनेक कवि हो चुके थे, परन्तु उनसे पहले का कोई भी हिन्दी कवि इतना लोकप्रिय नहीं हुआ, जितने कबीर हुए। हिन्दी के भक्त कवियों में आप सर्वप्रथम कवि हैं और निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। भक्तिकाल हिन्दी कविता का स्वर्णकाल कहा जाता है। उसके सब से पहले कवि आप ही हैं। हिन्दी के उत्कृष्ट कवियों में आपकी गणना की जाती है।

कबीर के चरित्र का यह पहलू तो अत्यन्त प्रशंसनीय है कि उन्होंने पाखंडों का खंडन किया और मनुष्य मात्र को समान बताया। परन्तु प्राचीन परम्पराओं को उखाड़ फेंकने की धुन में उन्होंने कई अच्छी बातों का भी खंडन किया। यह ठीक है कि मन्दिर में पूजा करना और तीर्थ यात्रा करना ही सब कुछ नहीं है; और पूजा, तीर्थयात्रा करने से ही पापी पुण्यात्मा नहीं बन सकता। परन्तु यदि कोई धर्म-परायण व्यक्ति पूजा और तीर्थयात्रा भी करे, तो ये दोनों चीजें बुरी नहीं हैं। कबीर यह भूल गये कि वह पाखंड का खंडन करने के लिये निकले थे; वह उन बातों के खंडन में जुट गये, जिनकी आड़ में पाखंड होता था। वह स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे, इसलिये उन्होंने पढ़े लिखे लोगों की खिल्ली उड़ाई; जैसे पढ़ा होना कोई बुरी बात और अनपढ़ होना अच्छी बात हो।

कबीर ने पुरानी दूषित परम्पराओं को तोड़ डालने का यत्न किय और अंशतः इसमें वे सफल भी रहे, किन्तु कोई नई अच्छी परम्परा चला पाना उनके लिये सम्भव न हुआ। कबीर का मूल्य हम उर झाड़ी झंखाड़ साफ करने वाले व्यक्ति के रूप में आंक सकते हैं, जो हिंस पशुओं से भरे जंगल को काटकर उसे मरुस्थल बना देता है। जमीन तो वह साफ कर देता है, पर उसमें नये बाग नहीं लगा पाता।

पर कबीर का परिश्रम व्यर्थ नहीं गया; जो जमीन उन्होंने साप की, उसमें आगे चलकर सूर और तुलसी ने बड़े सुरम्य उद्यान लगाये जिनकी छांह और सुगन्ध अब तक भी जनता को आनन्दित क रही है।

मलिक मुहम्मद जायसी

जिस प्रकार निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गी शाखा में कबीर का स्थान सर्वोच्च है, उसी प्रकार निर्गुण धारा की प्रेममार्गी शाखा में जायसी का स्थान सबसे ऊँचा है। जायसी ने अपनी प्रेममार्गी कविता द्वारा हिन्दू और मुसलमानों को उसी प्रकार एक दूसरे के निकट लाने की कोशिश की, जिस प्रकार कबीर ने की थी। किन्तु कबीर ने ज्ञान को अपना प्रधान साधन बनाया था, जायसी ने प्रेम को साधन बनाया। कबीर के अनुसार परमात्मा की प्राप्ति ज्ञान द्वारा हो सकती थी, परन्तु जायसी ने परमात्मा को पाने का उपाय प्रेम को बताया। जायसी की रचनाओं में प्रेम का जैसा अलौकिक चित्रण हुआ है, वैसा हिन्दी साहित्य में और कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

जीवन वृत्तान्त—मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म संवत् १५५७ में हुआ था। ये रायबरेली जिले में जायस नामक स्थान के निवासी थे, इसीलिये जायसी कहलाये। 'मलिक' इनकी पारिवारिक उपाधि थी। इन्होंने अपने दो गुरुओं का उल्लेख किया है, एक तो शेख मुहीउद्दीन चिश्ती और दूसरे सैयद असरफ। जायसी अपने आप भी पहुंचे हुए सिद्ध और फकीर माने जाते थे। अमेठी के राज परिवार में इनका बड़ा आदर था।

इन्हें बचपन में ही एक बार चेचक निकली थी, जिससे इनका चेहरा कुरूप हो गया था और इनकी एक आंख भी जाती रही थी। एक बार जब यह शेरशाह से मिले तो इनकी कुरूप आकृति को देख कर शेरशाह हँस पड़ा। उसके इस उपहास से जायसी खिन्न नहीं हुए। इन्होंने उससे केवल इतना पूछा: 'मोहि का हससि कि कोहरहिं' अर्थात् मुझे देखकर मुझ पर हँस रहे हो या मुझे बनाने वाले उस

कुम्हार पर ? इसे सुनकर शेरशाह की हँसी जाती रही और उसे अपने हँसने पर बड़ा खेद हुआ।

कहा जाता है कि जायसी का यह नियम था कि वह अकेले कभी भोजन न करते थे। किसी-न-किसी को अवश्य साथ बिठा लेते थे। एक बार गाँव से बाहर भोजन करते समय इन्हें कोई व्यक्ति ऐसा न मिला, जिसे यह साथ बिठा सकें। यह प्रतीक्षा करते रहे। संयोग से एक कोढ़ी उधर से गुजरा। अपना नियम पूरा करने के लिए जायसी ने उसे ही अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया। मनुष्य से घृणा करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था।

जायसी अपने जीवन काल में ही काफी प्रसिद्ध हो गये थे। इनके अनेक फकीर चेले थे, जो इनके बनाये हुए दोहों और चौपाइयों को जगह-जगह जाकर गा कर सुनाया करते थे।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में यह अमेठी के घने जंगलों में जा कर रहने लगे थे। अमेठी के राजा ने उन जंगलों में शिकार करना इसलिए मना करवा दिया, जिससे जायसी का कुछ अनिष्ट हो जाय। जायसी कहा करते थे कि उनकी मृत्यु किसी शिकारी के द्वारा होगी। कहा जाता है कि एक बार वह योग बल से बाघ का रूप धारण करके फिर रहे थे, तभी एक शिकारी ने उन पर गोली चला दी। जिससे उनकी मृत्यु हो गई। उनका स्वर्गवास संवत् १६०० में हुआ। उनकी समाधि अब तक भी अमेठी राज्य में बनी हुई है।

जायसी की रचनाएँ—जायसी ने तीन पुस्तकें लिखी हैं। (१) पद्मावत (२) अखरावट और (३) आखिरी कलाम। अखरावट में वर्णमाला के एक-एक अक्षर से प्रारम्भ करके चौपाइयाँ लिखी गई हैं जिनमें ईश्वर, संसार तथा जीव इत्यादि के विषय में सिद्धान्तों की बातें बताई गई हैं। आखिरी कलाम में प्रलय काल का वर्णन किया गया है।

जायसी की सबसे बड़ी, सबसे प्रसिद्ध और सबसे अच्छी रचना पद्मावत है, जो प्रेम कथा के रूप में लिखी गई है। यह प्रबन्ध काव्य है। इसकी कहानी एक हिन्दू प्रेम कथा है, जिसमें राजा रतनसेन के पद्मावती से प्रेम करने, उनका विवाह होने और पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण का वर्णन है। यह पुस्तक काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है और हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में तुलसी रामचरितमानस के बाद इसी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

पद्मावत की कथा निम्नलिखित है :

सिंहल द्वीप के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री पद्मावती अनुपम सुन्दरी थी। उसके योग्य वर ही न मिलता था। उसके पास हीरामन नाम का एक तोता था, जो बड़ा विद्वान था। एक दिन वह तोता पद्मावती से उसके लिये वर न मिलने के विषय में कुछ कह रहा था, जिसे राजा ने सुन लिया और सुनकर बहुत रुष्ट हुआ। राजा के डर से हीरामन उड़ गया। वन में वह एक चिड़ीमार के हाथ पड़ गया, जिसने उसे चित्तौड़ में एक ब्राह्मण को बेच दिया। तोता मनुष्य की तरह बोलता है, यह देखकर उसे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन ने खरीद लिया।

एक दिन राजा रत्नसेन शिकार को गया। पीछे उसकी रानी नागमती तोते से पूछने लगी : 'क्या मेरे समान संसार में और कोई दूसरी सुन्दरी भी है ?'

तोते ने उसे पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य का हाल सुनाया। सुन कर नागमती को डर लगा कि कहीं यह सब हाल राजा को न सुना दे, जिसे सुनकर राजा मुझ से विरक्त हो जाय। उसने एक दासी को तोते को मार डालने का आदेश दिया। दासी ने राजा के डर से तोते को मारा नहीं, छिपा दिया। लौटने पर तोते को न पाकर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ। अन्त में दासी ने तोता ला कर दिया। तोते के मुँह से पद्मावती का हाल सुनकर राजा उसे पाने के लिए जोगी बनकर घर

से निकल पड़ा। उसके साथ १६ हजार कुँवर भी जोगी बनकर चले

सिंहल पहुँच कर जोगियों ने गढ़ पर चढाई की, पर गन्धर्वसेन ने उन्हें हरा दिया। रत्नसेन को पकड़ कर सूली पर चढाने की तैयारी की जाने लगी। तभी महादेव आदि देवता उसकी सहायता के लिए आ गये। गन्धर्वसेन हार गया। पद्मावती का विवाह रत्नसेन से हुआ कुछ समय बाद वह पत्नी समेत चित्तौड़ लौट आया।

रत्नसेन की राजसभा में राघव चेतन नामक एक पंडित था, जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। उसकी किसी धूर्तता से रुष्ट होकर राजा ने उसे देश से निकाल दिया। वह राजा से बदला लेने के लिए दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के पास पहुंचा और पद्मावती के रूप की प्रशंसा करके उसे चित्तौड़ पर हमला करने के लिए उकसाया। अलाउद्दीन ने हमला कर दिया, पर वह गढ को जीत न सका। अन्त में उसने धोखे से रत्नसेन को पकड़ लिया और कह दिया : 'अगर पद्मावती मेरे महल में आ जायगी तो रत्नसेन छूट सकेगा, अन्यथा नहीं।'

छल का बदला छल से दिया गया। गोरा और बादल नामक दो सरदार ७००० पालकियों में सशस्त्र सैनिक छिपाकर दिल्ली पहुँचे और सुल्तान के पास संदेश भिजवाया कि अपनी सखियों समेत पद्मावती आ गई है। वह सुलतान के महल में आने से पहले अन्तिम बार अपने पति से मिल लेना चाहती है। सुलतान ने अनुमति दे दी। पालकी में पद्मावती नहीं, लुहार बैठा था। उसने रत्नसेन की बेड़ियां काट दीं। राजा को घोड़े पर सवार कराकर गोरा और बादल चित्तौड़ की ओर ले चले। सुलतान की सेना ने पीछा किया। गोरा तो सैनिकों के साथ मिलकर सेना को रोके रहा और बादल रत्नसेन को लेकर चित्तौड़ पहुंच गया।

इस बीच में कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती के पास अपनी दूती भेजी थी। अपमान से क्रुद्ध हो रत्नसेन कुम्भलनेर पर चढ़ दौड़ा। युद्ध में देवपाल और रत्नसेन दोनों मारे गये। नागमती

पद्‌मावती अपने पति के साथ सती हो गई।

द्मावत रूपक काव्य है—जायसी प्रेममार्गी साधक थे। उपासना पद्धति पर सूफी फकीरों का बहुत प्रभाव था। इनके त को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि इन्होंने प्रेम कहानी य लिखी है, परन्तु यह पूरी तरह लौकिक प्रेम कहानी नहीं है। न और पद्मावती के लौकिक प्रेम के साथ-साथ आत्मा और त्मा के अलौकिक प्रेम का वर्णन भी चलता रहता है। जायसी स बात को प्रकट भी कर दिया है कि अपने काव्य में उन्होंने , परमात्मा, माया और शैतान इत्यादि का रत्नसेन, पद्मावती, उद्दीन और राघवचेतन इत्यादि के रूपक बाँध कर वर्णन किया जायसी ने स्वयं इस रूपक को स्पष्ट भी कर दिया है :

तन चितउर, मन राजा कीन्हा, हिय सिंहल, बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरु सूआ जेइ पन्थ दिखावा, बिनु गुरु जगत का निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनियां धन्धा, बांचा सोइ न एहि चित बन्धा।
राघव दूत सोइ सैतानू, माया अलाउद्दीन सुलतानू॥

इस कारण पद्मावत को अन्योक्ति काव्य या 'रूपक काव्य' कहा है। इस काव्य के बीच-बीच में जहाँ-तहाँ आत्मा-परमात्मा म और विरह को लेकर बड़े ही सुन्दर आध्यात्मिक संकेत दिए हैं। यह ऐसी विशेषता है, जो हिन्दी में पद्मावत के अतिरिक्त महाकाव्य में नहीं पाई जाती। इसलिए पद्‌मावत के वर्णन कहीं- अत्यधिक मर्मस्पर्शी हो उठे हैं।

सूफी लोग परमात्मा को उसी प्रकार प्रेम करते हैं, जैसे कोई अपनी सुन्दर तरुणी पत्नी को प्रेम करता है। उनका कथन है इससे अधिक तीव्र प्रेम मनुष्य के मन में और कोई हो ही नहीं ता। इसलिए 'पद्‌मावत' में ईश्वर का प्रतीक पद्‌मावती है। पर प्रेम की भावना में मग्न होकर जायसी ने एक ओर तो सौन्दर्य

का विलक्षण वर्णन किया है और दूसरी ओर विरह का बड़ा मर्मस्पर्शी स्वरूप प्रकट किया है। पद्मावती का सौन्दर्य न केवल दर्शक को मुग्ध कर देने वाला है, बल्कि वह अपने आस-पास की वस्तुओं पर भी सुन्दरता का रंग चढ़ा देता है। जड़ और चेतन सब उससे प्रभावित होते हैं। जायसी लिखते हैं :

बेनी छोरि झार जो बारा, सरग पताल होहि अंधियारा।

अर्थात् जब पद्मावती वेणी खोलकर अपने बाल झाड़ने लगती थी, तो स्वर्ग और पाताल सब ओर बालों का कालापन अंधकार बन कर छा जाता था। इस रूप की यह विशेषता इसलिए है, क्योंकि यह उस रहस्यपूर्ण सत्ता (ईश्वर) का रूप है।

इसी तरह जायसी के विरह वर्णन में भी उसी रहस्यपूर्ण सत्ता के प्रति तड़प दिखाई पड़ती है। उसी के विरह से मजीठ और टेसू लाल हो गए हैं; सूरज उसी के विरह से तप कर जल रहा है और चांद जलकर आधा रह गया है। पद्मावती मायके से ससुराल जाने लगती है, तो ऐसा लगने लगता है, जैसे आत्मा-परमात्मा से मिलने के लिए संसार को छोड़कर चलने लगी हो।

पद्मावत में ऐसे स्थल अनेक हैं, जहां प्रेम कथा के साथ-साथ आत्मा-परमात्मा के प्रेम की झलक भी जायसी ने बड़े सुन्दर रूप में दिखाई है, पर शुरू से आखिर तक वह अपने इन दोनों अर्थों को पूरी तरह नहीं निबाह सके हैं। कई जगह लौकिक प्रेम कथा के बहाव में बहकर वह आत्मा-परमात्मा के प्रेम को भूल बैठते हैं और कहीं आत्मा-परमात्मा के प्रेम का वर्णन करते हुए पद्मावती और रत्नसेन की कथा को भूल जाते हैं।

जायसी के काव्य की विशेषताएं—जायसी से पहले के ज्ञानमार्गी कवि खंडन तथा झाड़-फटकार द्वारा लोगों को भक्ति के मार्ग पर लाना चाहते थे, लेकिन उनकी उपासना-पद्धति में हृदय को स्पर्श करने वाला तत्त्व नहीं था। इस कमी को प्रेममार्गी कवियों ने

पूरा किया। जायसी की रचना में कबीर की रचनाओं की अपेक्षा हृदय के लिए अत्यधिक स्थान है; यद्यपि जायसी की रचनाएँ भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना में ही लिखी गई हैं।

यद्यपि जायसी ने अपनी काव्य रचना प्रेममार्गी सूफी उपासना पद्धति के प्रचार के लिए की है, परन्तु इसमें उपासना प्रेम कथा के अन्दर दब सी गई है। जायसी में कवित्व का अंश अधिक है और साधना का अंश कम।

जायसी ने यद्यपि अपने काव्य के लिए कथा तो हिन्दू कथा चुन ली, परन्तु अपने आप में वे पक्के मुसलमान थे। काव्य के प्रारम्भ में उन्होंने अल्लाह और पैगम्बर की स्तुति की है। बीच में एक जगह रत्नसेन के मुख से उन्होंने मूर्तिपूजा की निन्दा भी कराई है। परन्तु मूर्ति पूजा की निन्दा तो उस समय कबीर तथा उनके अनुयायियों के प्रचार के कारण बहुत सामान्य वस्तु हो गई थी। जायसी की रचनाओं में हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।

जायसी ने सूफी परम्परा के अनुसार आत्मा को पुरुप अर्थात् रत्नसेन और परमात्मा को स्त्री अर्थात् पद्मावती के रूप में चित्रित किया है। कबीर ने इसके विपरीत परमात्मा को पुरुप और अपने आपको स्त्री चित्रित किया है। जायसी की रचनाओं पर विदेशी भावनाओं तथा रचना शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उन्होंने अपने प्रबन्ध काव्य को भारतीय पद्धति पर सर्गों के रूप में न बांट कर फारसी की मसनवी शैली में लिखा है। पद्मावत में वीर-शृंगार इत्यादि रसों का बहुत सुन्दर परिपाक हुआ है। शृंगार वर्णन में जायसी ने नख शिख तथा बारह मासा आदि के वर्णन भी किए हैं। जायसी का बारह मासा काव्य की दृष्टि से बहुत अच्छा माना जाता है। इन्होंने शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों के चित्रण में कुशलता प्रदर्शित की है। जहां उन्होंने पद्मावती के सौंदर्य का

वर्णन किया है, वहां सौंदर्य कवि की कुशलता के कारण अलौकिक और स्वर्गीय प्रतीत होने लगता है और जहां नागमती राजा रत्नसेन के वियोग में दुखी होती है वहां सारा संसार ही दुःख से तड़पता हुआ प्रतीत होता है। जायसी ने रसों और भावों की व्यंजना बहुत सुन्दर रीति से की है। जगह-जगह इनकी व्यंजनाएँ इसलिये और भी मर्मस्पर्शी हो उठी हैं, क्योंकि उनमें रहस्यमयी परोक्ष सत्ता के प्रति संकेत किये गए हैं।

जायसी को काव्यांगों का कुछ-न-कुछ ज्ञान अवश्य था, क्योंकि उन्होंने रसों और अलंकारों का यथोचित रूप से प्रयोग किया है। उनकी रचना में उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, अत्युक्ति इत्यादि अलंकार खूब आये हैं और इनसे रचना का सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। अतिशयोक्तियों और अत्युक्तियों के प्रयोग में जैसी सफलता जायसी को मिली है, वैसी कम ही कवियों को मिली होगी।

जायसी के वर्णन कहीं-कहीं बहुत लम्बे हो गये हैं और कुछ स्थानों पर तो वे वर्णन कवित्वपूर्ण न होकर अनेक पदार्थों की लम्बी-लम्बी सूचियां गिनाने के समान हो गये हैं; जैसे कहीं घोड़ों का वर्णन करने लगे, तो घोड़ों की बीसियों जातियाँ गिनानी शुरू कर दी। सेना का वर्णन करने लगे, तो पचासों हथियारों की सूची बनानी प्रारम्भ कर दी। इनसे यह तो अवश्य पता चल जाता है कि कवि को इन चीज़ों का ज्ञान था, किन्तु इनसे उनका काव्य कौशल प्रकट नहीं होता।

जायसी ने मुसलमान होते हुए भी अपनी हिन्दू प्रेम कथा में इस बात का ध्यान रखा है कि हिन्दुओं की परम्पराओं का समुचित रूप में चित्रण किया जाय; जैसे हिन्दुओं का पतिव्रत धर्म। उन्होंने पद्मावती और नागमती को पूर्णतया पतिव्रता चित्रित किया है।

जायसी की भाषा—पद्मावत की भाषा अवधी है। इसकी रचना दोहे चौपाई वाली शैली में हुई है, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास ने अपना रामचरितमानस लिखा। पद्मावत में सात चौपाइयों

के बाद एक दोहा आता है और रामचरितमानस में आठ के बाद। पद्मावत की भाषा में पूर्वी अवधी का प्रयोग है और रामचरितमानस में पश्चिमी अवधी का। जायसी के पद्मावत की भाषा मुख्यरूप से प्रचलित बोल चाल की भाषा है, परन्तु तुलसी के रामचरित की भाषा साहित्यिक अवधी है।

जायसी का स्थान हिन्दी के प्रबन्ध काव्य लेखकों में तुलसी के बाद दूसरे नम्बर पर है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में उनका बहुत महत्व है। वैसे वे निर्गुण धारा की प्रेम मार्गी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनकी रचनाओं में अदृश्य सत्ता के प्रति जो संकेत पाये जाते है, उनमें रहस्यवाद की झलक दिखाई पड़ती है। जायसी का रहस्यवाद सैद्धान्तिक न होकर भावुकतापूर्ण रमणीय रहस्यवाद है। वैसे कबीर भी रहस्यवादी कवि हैं, परन्तु कबीर का रहस्यवाद हृदय को इतना प्रभावित नहीं करता, जितना मस्तिष्क को। इस दृष्टि से जायसी का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि यह रहस्यवादी प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल में आकर फिर पनपी।

सूरदास

सूरदास हिन्दी के मुक्तक काव्य लिखने वाले कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जैसे सुन्दर पद या गीत सूरदास ने लिखे हैं, वैसे हिन्दी में किसी कवि ने नहीं लिखे। जिस प्रकार प्रबन्ध काव्य लेखकों में तुलसीदास बेजोड़ हैं, उसी प्रकार मुक्तक काव्य लेखकों में सूरदास अनुपम हैं।

सूरदास हिन्दी साहित्य की सगुण भक्ति धारा के कृष्ण भक्त कवियों में से एक थे। गोसाईं विट्ठलनाथजी ने जिन आठ सर्वश्रेष्ठ कृष्णभक्त कवियों को अष्टछाप में लिया, उनमें से सूरदास भी एक थे। इतना ही नहीं, ये अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। सूरदास के भक्ति शृङ्गार और वात्सल्य से भरे हुए पद आज भी काव्य प्रेमियों और और संगीत प्रेमियों की जिह्वा पर विद्यमान हैं। संगीत प्रेमियों में जितना आदर सूर के पदों का हुआ है, उतना हिन्दी के अन्य किसी कवि का नहीं हुआ।

जीवन वृत्तान्त——सूरदासजी के जन्म के विषय में प्रामाणिक रूप से जानकारी का बहुत अभाव है। उनके विषय में जो कुछ किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं अथवा उनकी रचनाओं में जहाँ तहाँ जो कुछ थोड़ा बहुत अपने विषय में अस्पष्ट सा वर्णन मात्र आ गया है, उससे उनके विषय में जानकारी प्राप्त होती है। 'भक्तमाल' में भी उनके विषय में लिखा मिलता है।

सूरदासजी का जन्म संवत् १५४० में रुनकता नामक ग्राम में हुआ था। यह गांव आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर है। कुछ विद्वानों का मत है कि इनका जन्म सीही नामक ग्राम में हुआ था, जो दिल्ली नगर से पच्चीस मील दूर है। कुछ लोग इन्हें सारस्वत ब्राह्मण

बतलाते हैं और कुछ लोग इन्हें चन्द बरदाई का वंशज ब्रह्म भट्ट बतलाते हैं। इनकी एक पुस्तक साहित्य लहरी में एक पद है, जिससे यह अनुमान होता है कि ये चन्द के वंशज थे। कहा जाता है इनके पिता का नाम हरिश्चन्द्र था। सूरदासजी के ६ भाई और थे। वे मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। सूरदासजी नेत्रहीन तो थे ही, जब ये अपने भाइयों की खोज में निकले तो रास्ते में चलते-चलते एक अन्धे कुएं में गिर पड़े। कुएं में ये छह सात दिन रहे। सातवें दिन कृष्णजी ने इन्हें दर्शन दिये और कहा कि 'कोई वर माँग लो।' सूरदासजी ने यह वर माँगा कि 'जिन नेत्रों से मैंने आपको देखा है उन से अब और किसी को न देखूं।' कहा जाता है कि इस कारण उनके नेत्रों की ज्योति फिर समाप्त हो गई।

एक किम्वदन्ती यह भी है कि सूरदासजी एक सुन्दर युवती पर मुग्ध हो गये थे और यह सोच कर कि इस आसक्ति का कारण उनके नेत्र ही हैं, उन्होंने अपने नेत्र फुड़वा लिए थे। कुछ अन्य विद्वान् इन किम्वदन्तियों पर विश्वास न कर के उन्हें जन्मान्ध ही मानते हैं। परन्तु जब हम इनकी रचनाओं पर दृष्टिपात करते हैं, तो उसमें बाल-लीला तथा किशोर वय की प्रेम लीलाओं में शारीरिक चेष्टाओं का ऐसा जीता जागता और सजीव वर्णन मिलता है, जिसे बिना अपनी आँखों से देखे लिख पाना किसी भी कवि के लिए सम्भव नहीं। इसलिए यह तो समझना ही चाहिए कि सूरदासजी जन्मान्ध नहीं थे।

सूरदासजी गौघाट नामक स्थान में एक विरक्त साधु के रूप में रहा करते थे। गौघाट रुनकता नामक गाँव के पास ही है। संवत् १५७६ में उनकी भेंट महाप्रभु वल्भाचार्य से हुई। वल्लभाचार्यजी ने पुष्टि मार्ग नामक सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया था। इन्होंने गोवर्धन पर श्रीनाथजी का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था। सूरदासजी से मिलने पर वल्लभाचार्यजी ने उनके अपने बनाये हुए पदों को सुना और सुन कर

बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सूरदासजी को अपना शिष्य बना लिया और उनकी भक्ति तथा काव्य कौशल को देख कर श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तन की सेवा का काम सूरदासजी को सौंप दिया। वल्लभाचार्यजी ने सूरदासजी को आदेश दिया कि 'श्रीमद्भागवत की कथा को हिन्दी में ऐसे पदों में लिखो, जिन्हें गाया जा सके।' सूरदासजी का सूरसागर श्रीमद्भागवत की कथाओं पर ही आधारित है। इसमें दशम स्कंध की कथा ही विस्तार से कही गई है, बाकी स्कंधों की कथा को संक्षेप में ही टाल दिया गया है। सूरदासजी का स्वर्गवास सम्वत् १६२० में पारसौली नामक ग्राम हुआ।

सूरदासजी की रचनाएँ—सूरदासजी के बनाये हुए ग्रन्थ कहे जाते हैं। (१) सूरसागर (२) सूर सारावली (३) साहित्य लहरी (४) नल दमयन्ती (५) ब्याहलो। परन्तु इनमें से सूरसागर ही विशेष महत्व का ग्रन्थ है। कहा जाता है कि इसमें सवा लाख पद थे। परन्तु आजकल इसके केवल चार या पांच हजार पद ही प्राप्त होते हैं। इनमें श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा का विस्तार से वर्णन है। सूर सारावली और साहित्य लहरी दोनों ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माने जाते। इनके कुछ पद सूरसागर में भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार 'नल दमयन्ती' और 'ब्याहलो' नामक ग्रन्थ भी एक तो उपलब्ध ही नहीं होते और दूसरे यह भी संदिग्ध है कि उनकी रचना सूरदास ने की भी थी या नहीं।

सूरदासजी के काव्य की विशेषताएं—सूरदासजी ने कोई प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा। प्रबन्ध काव्य में आदि से लेकर अन्त तक एक ही कथा क्रमबद्ध रूप से चलती-रहती है। सूरसागर में ऐसी कोई क्रमबद्ध कथा नहीं है। उसके सभी पद अपने आप में स्वतन्त्र और पूर्ण हैं। यह ठीक है कि इन पदों में से बहुत से छोटी-छोटी कथाओं का आधार लेकर चले हैं; सूरदासजी ने अपने पदों में नये-नये प्रसंगों की

कल्पना की है, और वे प्रसंग ऐसे हैं, जो पाठक के हृदय को मुग्ध कर लेते हैं; फिर भी इनमें प्रवन्ध काव्य की सी रोचकता नहीं है। इनका प्रत्येक पद रस से भरा हुआ प्याला है, वहती हुई अखण्ड रस की धारा नहीं।

सूरदासजी ने कुछ दृष्टिकूट वाले पद भी लिखे हैं, जिनमें किसी एक ही शब्द को लेकर उसका अनेक अर्थों में प्रयोग घरके चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। कुछ पदों में लुप्तोपमाओं का भी खिलवाड़ किया गया है। इस प्रकार के पदों का अर्थ समझ पाना कई जगह वहुत कठिन हो जाता है। परन्तु ऐसे पद संख्या में वहुत थोड़े हैं; और सूरदासजी का अधिकाँश रचना माधुर्य और रस से भरी हुई है।

सूरदासजी ने यों तो अपनी रचनाओं में सभी रसों का थोड़ा वहुत वर्णन किया है, परन्तु उनकी रचनाओं का मुख्य भाग शृङ्गार और वात्सल्य को लेकर ही वना है। वात्सल्य और शृङ्गार को लेकर उन्होंने जैसी उत्कृष्ट रचना की है, वैसी हिन्दी में किसी कवि ने नहीं की। यह ठीक है कि सूर की कविता का क्षेत्र अपेक्षाकृत वहुत सीमित है; उनकी रचना में जीवन की निरन्तर वदलती जाने वाली अनेकानेक परिस्थितियों का चित्रण नहीं है; उन्होंने केवल शृङ्गार, वात्सल्य तथा वैराग्य तक ही अपने आप को सीमित रखा है; फिर भी यह वात निश्चित है कि वे इन क्षेत्रों में अन्य कवियों की अपेक्षा वहुत आगे वढ़े हुए हैं। वात्सल्य और शृङ्गार में उनसे कोई टक्कर नहीं ले सकता। वैराग्य सम्वन्धी उनकी रचनाएँ तुलसी की रचनाओं के समान उत्कृष्ट हैं।

सूरदास की रचनाओं में कृष्ण के वाल्यकाल तथा नवयौवन की प्रेम लीलाओं के अनेकानेक सुन्दर चित्र चित्रित हुए हैं। सूरदास ने शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का चित्रण वड़ी कुशलता से किया है। उनका वियोग शृङ्गार संयोग शृङ्गार की अपेक्षा भी कहीं अधिक अच्छा वन पड़ा है। प्रेम की सूक्ष्म मनोवृत्तियों का चित्रण

करने में केवल जायसी ही सूरदास के समीप पहुंच सकते हैं, परन्तु दोनों की शैली बिल्कुल अलग-अलग है।

सूर का वात्सल्य वर्णन—कृष्ण नन्द के घर पर रह कर बड़े हुए थे। बढ़ते हुए बालक की मनोहर गतियों, विचित्र भावभंगियों और भोली तथा प्यारी बातों का सूरदास ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। आश्चर्य की बात यह है कि ये सब बातें लगभग वही हैं, जो प्रत्येक बालक बड़ा होते समय करता है और जिन्हें लगभग सभी माता पिता देखते हैं और देख कर प्रसन्न होते हैं। कृष्ण का घुटनों के बल चलना, खड़े हो कर लड़खड़ाते हुए चलने का यत्न करना, तरह-तरह के छोटे-छोटे हठ, और शरारतों का सूरदास ने ऐसा मनोहारी वर्णन किया है कि कोई भी बात छूटने नहीं पाई है। मक्खन चुरा कर खा लेना कृष्ण को बड़ा प्रिय था। अपने ही घर में नहीं, बल्कि पड़ोस की गोपियों के यहाँ से भी वह मक्खन चुरा लाते थे। पकड़े जाने पर ऐसे बहाने बनाते थे कि उन्हें पकड़ कर माँ यशोदा के पास लाने वाली गोपियों को भी हंसी आ जाती थी।

कृष्ण कुछ और बड़े हुए तो ग्वालों के साथ गौएँ चराने के लिए वन में जाने लगे। वहाँ कभी ग्वालों के साथ खेलते और कभी उनसे झगड़ते। कभी ग्वाल उन्हें छेड़ने, कहते : 'तुम नन्द के बालक नहीं हो। नन्द और यशोदा दोनों गोरे हैं और तुम हो काले। तुम्हें तो उन्होंने कहीं से खरीदा है।' कृष्ण आ कर यशोदा से शिकायत करने, क्योंकि छेड़ने वालों में बलराम भी होते थे। यशोदा उन्हें प्यार से मनातीं, और बलराम को डाँटतीं।

बलराम की चोटी लम्बी थी और कृष्ण की छोटी थी। एक बार कृष्ण यशोदा से बार-बार पूछते हैं कि 'मेरी चोटी बलराम की-सी चोटी की तरह कब लम्बी और मोटी होगी?' बालकों में एक दूसरे से इस प्रकार होड़ करने की [illegible] है।

कृष्ण और बड़े हो गये। उनकी भोली बातें अब शरारत का रूप धारण करने लगीं। कंकड़ फेंक कर किसी ग्वालिन की दही की मटकी फोड़ देना, नदी में स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्र छिपा देना इत्यादि बातें ऐसी हो चलीं, जिनके लिए यशोदा को आये दिन उलहने सहने पड़ते थे। फलस्वरूप कभी-कभी कृष्ण को यशोदा के हाथों सजा भी भुगतनी पड़ती थी। पर इस सजा की मिठास भी वही जान सकता है, जिसने इस प्रकार की सजा दी हो, या पाई हो।

कालिय नाग का दमन, मस्त बैल को नाथना, गोवर्धन धारण तथा अन्य कई साहस के काम इस किशोर अवस्था में कृष्ण ने किये, जिस से वह गोकुल निवासियों के प्रेम पात्र बन गये।

सूर का शृंगार वर्णन—किशोर अवस्था भी समाप्त हो गई और कृष्ण युवा हो गये। जिन गोप और गोपिकाओं के साथ वे बचपन में खेलते रहे थे, वे युवा हो गये। बचपन का सरल स्नेह अब प्रेम में परिवर्तित हो गया। जिन गोपियों से वह निःसंकोच मिल लेते थे, वे अब उनसे मिलने में सकुचाने लगीं, और साथ ही मिलने के लिये बेचैन भी रहने लगीं। इस प्रेम का वर्णन सूरदास ने बड़े विस्तार से किया है। प्रेम की सैकड़ों दशाओं की कल्पना कर के सूर ने सैकड़ों पद लिखे हैं, जिसमें राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया गया है।

शृंगार रस के दो पक्ष होते हैं। (१) संयोग और (२) वियोग। संयोग पक्ष में उन बातों का वर्णन रहता है, जो प्रेमी और प्रेमपात्र के साथ रहने की दशा में होती हैं। इसमें उन दोनों के प्रेमपूर्ण व्यवहार और वार्तालाप का वर्णन रहता है। जब तक कृष्ण गोकुल में रहे, तब तक का कृष्ण और गोपियों का परस्पर प्रेम व्यवहार शृंगार का संयोग पक्ष है। सूरदास ने यह वर्णन ऐसा अद्भुत किया है कि उनसे पहले या पीछे का कोई भी हिन्दी कवि इस क्षेत्र में उनसे आगे नहीं बढ़ सका। बाद के कवियों की रचना इस क्षेत्र में सूर की नकल ही रही।

पर कुछ समय बाद कंस के बुलावे पर कृष्ण मथुरा चले गये। वहाँ कंस को मार कर वह राजा बन गये और फिर लौट कर कभी गोकुल नहीं आये। जिन गोपियों से उनका इतना प्रेम था, उनकी उन्होंने एक बार भी सुध नहीं ली। कृष्ण को तो शायद अपने काम काज में गोपियों के प्रेम की ओर ध्यान देने का अवसर मिला, किन्तु बेचारी गोपियों का तो जैसे सर्वस्व ही छिन गया। कृष्ण के बिना गोकुल सूना लगने लगा। कृष्ण की जिन शरारतों से वह परेशान रहा करती थीं, उनके समाप्त हो जाने से उन्हें अब और अधिक परेशानी होने लगी। अब उन्हें आ कर पता चला कि वे कृष्ण को कितना अधिक प्यार करने लगी थीं। गोपियों की इस विरह व्याकुलता का चित्रण सूरदास संयोग पक्ष की अपेक्षा भी कहीं अधिक मर्मस्पर्शी किया है। गोपियाँ जिस तरह कृष्ण से मिलने को व्याकुल हैं, उसी तरह सूरदास स्वयं भी तो कृष्ण के दर्शन के लिए विकल थे। इसलिए उन्हें गोपियों की व्याकुलता का चित्रण करने में सफलता मिली। नन्द, यशोदा, राधा, गोपियाँ और ग्वाल ही कृष्ण के विरह में व्याकुल नहीं हैं, बल्कि वे गौएँ भी उदास हो गई हैं, जिन्हें कृष्ण चराया करते थे। गोकुल का पत्ता पत्ता कृष्ण के बिना बेचैन हो उठा है।

प्रेम में मतवाली थीं। उद्धव का उपदेश उन्हें मूर्खता से भरा हुआ जान पड़ा। उन्होंने तरह तरह से उद्धव की हँसी उड़ाई। उन्होंने पूछा: 'आखिर यह निर्गुण है किस देश का वासी?' एक और बोली: 'वैसे तो विश्वास नहीं होता कि तुम्हें कृष्ण ने भेजा हो और यह सब बातें कहने को कहा हो। पर तुम कहते हो, तो मानना ही पड़ता है। पर यह तो बताओ तो तुम्हें यह संदेश देते हुए कृष्ण हलका सा मुसकराये तो नहीं थे?' अर्थात् उन्होंने तुम्हें मूर्ख बनाने को यहाँ भेजा है।

इस प्रकार गोपियाँ उद्धव को निरुत्तर कर देती हैं और उनके तीव्र प्रेम को देखकर उद्धव भी अपना सारा ज्ञान भूल जाते हैं और सगुण भगवान के उपासक बन जाते हैं।

उस समय, ऐसा लगता है, निर्गुण और सगुण भक्ति का विवाद जोरों पर था। कबीर तथा उनके अनुयायी निर्गुण भक्ति का प्रचार कर चुके थे और उनका विरोध सगुण भक्ति के प्रचारकों से होता होगा। उनके मुकाबले में अपने पक्ष को मजबूत करने के लिए ही सूर को भ्रमरगीत का प्रसंग लाना पड़ा। भ्रमरगीत द्वारा सूर ने निर्गुण भक्ति की अपेक्षा सगुण भक्ति को अधिक अच्छा सिद्ध कर दिखाया है।

निर्गुण भक्ति के विरोध में तुलसीदास ने भी लिखा है, परन्तु उनकी रचना में ऐसा विवाद बहुत ही थोड़ा है।

काव्य-कला की दृष्टि से सूरदास की रचना उत्कृष्ट कोटि की है। उनकी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग बहुत सुन्दर रीति से हुआ है। उपमा उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक इत्यादि अनेक अलंकार सूर की कविताओं में प्रयुक्त हुए हैं। सूरदास ने यद्यपि कहीं कहीं शब्दों का खिलवाड़ किया है, परन्तु खिलवाड़ के तौर पर अलंकारों का प्रयोग उन्होंने कम ही किया है। यह खिलवाड़ बहुत कुछ दृष्टिकूट वाले पदों में दिखाई पड़ते हैं।

सूरदास की भक्ति का स्वरूप--सूरदास जी की भक्ति सख्य भाव की थी। वे अपने आप को कृष्ण का सखा मानते थे। इस प्रकार की भक्ति वल्लभाचार्य जी के पुष्टि मार्ग का परिणाम थी। वल्लभाचार्य जी दास्य भाव की भक्ति की अपेक्षा सख्य भाव की भक्ति को अधिक उत्कृष्ट मानते थे। इसके विपरीत तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति है।

तुलसी और सूर की भक्ति के रूप में अन्तर होने का कारण यह है कि तुलसी ने अपने भगवान का लोकरक्षक रूप चित्रित किया था। उनके भगवान सर्वशक्तिशाली, दुष्टों का संहार करने वाले, भक्तों को शरण में लेने वाले परब्रह्म हैं और वे बहुत महान् हैं। उनकी तुलना में भक्त अत्यन्त तुच्छ है; सैकड़ों दोषों से भरा हुआ है। उसके लिए भगवान की कृपा प्राप्त करने का एक मात्र उपाय दास्य भाव की भक्ति ही है। इसके विपरीत सूरदास के भगवान लीलामय, लोकरंजक कृष्ण हैं। वे सदा लीला करते हैं। भक्त को इन लीलाओं में उनके सखा के रूप में साथ रहना होता है। इसलिए उसे हर समय गिड़गिड़ाते रहने की आवश्यकता नहीं होती। सूरदास जी कहीं-कहीं अपने भगवान पर रोब भी जमाने लगते हैं। वैसे सूर के अनेक पदों में तुलसी की भाँति [illegible] हैं।

सूर की भाषा—सूर ने अपनी कविता शुद्ध ब्रजभाषा में की है। यह ब्रज प्रदेश की बोल चाल की भाषा है परन्तु सूरदास ने इसे परिष्कृत करके साहित्यिक रूप दे दिया है। कुछ विद्वानों का विचार है कि सूरसागर ब्रजभाषा की पहली रचना नहीं हो सकती। क्योंकि न केवल उसकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित है, बल्कि उसकी शैली भी सुनिर्धारित है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि सूरदास से पहले भी ब्रजभाषा में इस प्रकार की गीतमय रचनाएँ होती रही होंगी और उसी परम्परा का परिष्कृत रूप सूरसागर है। सूर की भाषा में संस्कृत, फारसी और पंजाबी शब्दों के प्रयोग भी जहाँ तहाँ मिलते हैं, परन्तु वे भाषा के प्रवाह में इस तरह प्रयुक्त हुए हैं कि अखरते नहीं हैं। सूर ने अपने पदों की रचना गाने के लिए की है। वे स्वयं श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। आज भी संगीतज्ञ उत्कृष्ट संगीत के लिए सूर के पदों का ही उपयोग करते हैं।

सूर का हिन्दी साहित्य में स्थान—सूरदास का स्थान हिन्दी साहित्य में तुलसीदास जी के समत्त है। ये दोनों ही कवि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। दोनों की शैली अलग अलग है। दोनों का क्षेत्र भी अलग-अलग है। इसलिए इन दोनों की आपस में तुलना करना सम्भव नहीं है। तुलसीदास एक दूरबीन की भांति हैं, जिसके द्वारा अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र को दूर-दूर तक देखा जा सकता है, भले ही उस सारे क्षेत्र की प्रत्येक वस्तु बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई न भी पड़े और सूरदास एक खुर्दबीन की भांति हैं, जिसके देखने का क्षेत्र तो बहुत सीमित और छोटा सा होता है, परन्तु उस छोटे से क्षेत्र का प्रत्येक कण बड़ा विशाल और स्पष्ट आकार धारण करके आँखों के सामने आता है। उस छोटे से क्षेत्र का कोई भी कोना छिपा हुआ या अछूता नहीं रहता। सूरदास ने भी जिस क्षेत्र में कविता की है, उसमें कुछ भी अछूता नहीं छोड़ा।

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी को हिन्दी का सबसे बड़ा कवि माना जाता है। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक रामचरितमानस है, जो आज उत्तरी भारत में अधिकांश जनता के लिए धर्म पुस्तक के रूप में प्रयुक्त हो रही है। हिन्दी के अन्य किसी भी कवि ने देश की जनता को इतना प्रभावित नहीं किया, जितना तुलसीदास ने। तुलसी ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दू-जाति को ऐसा पक्का आधार प्रदान किया, जिसका सहारा लेकर वह इस्लाम धर्म का मुकाबला कर सकती थी। यद्यपि निर्गुण पन्थी भक्तों ने भी इस्लाम के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने का अपने ढंग से यत्न किया था, परन्तु उनका मार्ग जनता को इसलिये बहुत रुचिकर नहीं हो सका, क्योंकि निर्गुण की उपासना जन-साधारण के बस की बात नहीं थी। ज्ञान का मार्ग सर्व-साधारण के लिये उपयोगी नहीं हो सकता। इसके लिए तुलसी ने सगुण भक्ति का मार्ग दिखाया, जिस पर चलकर अशिक्षित तथा साधनहीन लोग भी भगवान की कृपा और मुक्ति पाने की आशा कर सकते थे। एक ओर तो तुलसी ने इस्लाम के प्रवाह को रोकने के लिये नया मार्ग [illegible] किया और दूसरी ओर उन निर्गुणपन्थी भक्तों को भी [illegible] कर दिया, जो पुरानी रूढ़ियों को तोड़ डालना [illegible] और [illegible] का [illegible] मार्ग समझते थे। वे लोग [illegible] और [illegible] के [illegible] थे, धार्मिक विधि विधानों की उपेक्षा [illegible] थे। उनका मार्ग [illegible]। [illegible] पर तुलसी ने नया [illegible] [illegible] नहीं माना जा सकता। [illegible] का विनाश [illegible] हो सकता

है, परन्तु केवल झाड़ी-झंखाड़ों को काट डालने से किसान का काम पूरा नहीं हो जाता। उसे उनके स्थान पर कुछ नये और उपयोगी पौधे भी लगाने होते हैं, जिनसे बल और जीवन देने वाले फल प्राप्त हो सकें। यह काम तुलसीदास जी ने किया।

तुलसीदास का जीवन-चरित्र—तुलसीदास जी के जीवन-वृत्तान्त के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि ये राजापुर गांव के रहने वाले थे। कुछ अन्य विद्वानों का कथन है कि इनका जन्म सोरों में हुआ था। तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। तुलसी का जन्म सम्वत् १५५४ में हुआ था। कुछ विद्वान् इनका जन्म सम्वत् १५८६ में हुआ मानते हैं।

किंवदन्ती है कि जन्म के समय तुलसीदास पाँच वर्ष के बालक जितने बड़े थे। उनके मुंह में पूरे दांत भी थें। इससे भयभीत होकर उनके माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया और पालन-पोषण के लिए मुनिया नाम की एक दासी को दे दिया। यह भी कहा जाता है कि तुलसीदास का जन्म अभुक्तमूल नामक नक्षत्र में हुआ था, जो अशुभ समझा जाता है। इसलिए इनके माता-पिता ने इन्हें त्यागा था।

कारण चाहे जो भी रहा हो, परन्तु यह सत्य प्रतीत होता है कि माता-पिता ने उन्हें बचपन में छोड़ दिया था और इनका पालन-पोषण मुनिया दासी ने ही किया। पांच वष बाद मुनिया की भी मृत्यु हो गई और तब तुलसीदास को इधर-उधर भटकने के सिवाय और कोई सहारा न रहा। उन्हें कुछ समय तक भिक्षा मांग कर भी पेट भरना पड़ा। कुछ समय बाद बाबा नरहरिदास ने उन्हें अपने पास रख लिया। इन बाबा नरहरिदास की तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस के प्रारम्भ में स्तुति की है।

नरहरिदास के साथ गोस्वामी तुलसीदास काशी चले आये। यहां

उन्होंने शेष सनातन नामक विद्वान से विद्या पढ़ी। पन्द्रह वर्ष तक अध्ययन करने के बाद वह अपने गांव राजापुर लौट गये।

तुलसीदास का विवाह रत्नावली नाम की तरुणी से हुआ था। तुलसीदास अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। कहा जाता है कि एक बार रत्नावली उन्हें बिना बताये अपने मायके चली गई। तुलसीदास को उसके अभाव में रहना बहुत कठिन प्रतीत हुआ और वे भी उसी दिन बरसात से भरी हुई नदी को पार करके रत्नावली के पास जा पहुँचे। कहा जाता है कि इससे रत्नावली ने क्षुब्ध होकर इन्हें निम्नलिखित दोहे कहे :

लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।

तुलसीदास जी मुगल सम्राट् अकबर के समय विद्यमान थे। अब्दुर्रहीम खानखाना, टोडर तथा महाराजा मानसिंह इनके इष्टमित्रों में से थे। रहीम से इनका पत्र-व्यवहार भी होता रहता था। रहीम स्वयं अच्छे कवि थे। यों मीरा से इनके पत्र-व्यवहार की बात प्रचलित है, परन्तु दोनों के जन्म-मरण की तिथियों पर विचार करने के बाद कि मीरा से पत्र-व्यवहार की बात कपोलकल्पित मानी जाती है।

तुलसीदास की मृत्यु संवत् १६८० में काशी में हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है :

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

कुछ लोग 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्रावण श्यामा तीज' पाठ मानते हैं।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में तुलसीदास रोग-ग्रस्त रहे। उन दिनों काशी में प्लेग फैली थी। तुलसीदास को भी प्लेग हुई थी, जिसे उन्होंने बाहूमूल की पीड़ा कहा है। इससे व्यथित होकर उन्होंने 'हनुमान बाहुक' नामक ग्रंथ की रचना की। कहते हैं कि इससे उनका रोग शान्त हो गया था पर उसके कुछ ही समय पश्चात् उनका देहावसान हो गया।

तुलसीदास जी की रचनाएं—गोस्वामी तुलसीदास जी के लिखे निम्नलिखित ग्रंथ प्राप्त होते हैं : १. रामचरितमानस, २. विनयपत्रिका, ३. दोहावली, ४. कवितावली, ५. गीतावली, ६. रामाज्ञाप्रश्न, ७. बरवै रामायण, ८. रामलला नहछू ९. कृष्ण गीतावली, १०. वैराग्य संदीपनी, ११. पार्वती मंगल और १२. जानकी मंगल।

यों तो तुलसीदास जी की सभी रचनाएँ सुन्दर हैं, परन्तु राम-

मानस में रामायण की कथा कही गई है। रामचरितमानस का प्रचार हिन्दी के अन्य किसी भी काव्य ग्रन्थ की अपेक्षा कहीं अधिक है। इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यह है इसमें कविता के सौंदर्य के साथ-साथ मनुष्य के शेष कर्तव्यों का भी प्रतिपादन किया गया है। तुलसीदास जी ने राम, लक्ष्मण, भरत, सीता इत्यादि पात्रों द्वारा हमारे सम्मुख वे आदर्श स्थापित करवा दिये हैं, जिनके अनुसार मनुष्य को जीवन बनाने का यत्न करना चाहिए। एक प्रकार से रामचरितमानस काव्य ग्रन्थ होने के साथ-साथ आचारग्रन्थ और धर्म ग्रन्थ भी है। देश के करोड़ों अर्ध शिक्षित और अशिक्षित लोग शताब्दियों से रामचरितमानस को धर्म ग्रन्थ जैसा आदर देते आये हैं। रामचरितमानस में यह बतलाया गया है कि किन परिस्थितियों में मनुष्य को क्या करना उचित है? पिता, पुत्र, पत्नी, भाई, राजा, प्रजा, गुरु और शिष्य सभी के कर्तव्यों का प्रतिपादन कहानी के प्रसंग में स्वयं ही हो गया है और सम्पूर्ण रामचरितमानस से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य का जीवन राम इत्यादि की भांति बिताना चाहिए, रावण इत्यादि की भांति नहीं। रामचरितमानस का अन्तिम निष्कर्ष यही है कि विजय पुण्य की होती है, पाप की नहीं। पाप अन्त में नष्ट होकर ही रहता है।

विनयपत्रिका में ज्ञान, वैराग्य, विनय और भक्ति के पद लिखे गये हैं। तुलसीदासजी राम के अनन्य भक्त थे। राम को वे सब देवताओं से बड़ा मानते थे। उन दिनों वैष्णवों और शैवों में शिव और विष्णु को एक दूसरे से बड़ा सिद्ध करने के लिये विवाद चला करता था। पर तुलसीदासजी का हृदय संकीर्ण नहीं था। उन्होंने अपनी विनयपत्रिका में राम के साथ-साथ अन्य सभी देवताओं की अलग-अलग भी स्तुति की है। विनयपत्रिका अपने ढंग का अनोखा ग्रन्थ है। भक्त की जैसी दीनता, आत्मसमर्पण और विनय की भावना इसमें मिलती है वैसी और कहीं नहीं मिलती।

गीतावली में राम कथा सूरसागर की भांति पदशैली में वर्णित की गई है। कवितावली में कवित्त और सवैयों में राम कथा कही गई है। पार्वती मंगल में शिव और पार्वती के तथा जानकी मंगल में राम और सीता के विवाह का वर्णन है।

तुलसीदास का हिन्दी साहित्य मे महत्व—तुलसीदास का स्थान हिन्दी साहित्य में सब से ऊंचा माना जाता है। उनकी तुलना जायसी और सूरदास से की जाती है। जायसी तुलसी से पहले हुए थे और सूरदास तुलसी के समय विद्यमान थे। जायसी ने पद्मावत महाकाव्य लिखा, जो रामचरितमानस की भांति दोहे चौपाइयों की शैली में है और सूरदास ने सूरसागर लिखा, जो पदों की शैली में है। इसमें सन्देह नहीं कि सूरसागर के पद और पद्मावत के वर्णन कई जगह तुलसीदासजी की रचनाओं से अधिक अच्छे बन पड़े हैं। परन्तु सूरदास ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा और जायसी ने ब्रजभाषा में रचना नहीं की। तुलसीदास ने न केवल अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में रचना की, बल्कि उस समय प्रचलित सभी शैलियों में रचना की। दोहे चौपाइयों में उन्होंने रामचरितमानस लिखा, सूरसागर के पदों की शैली में विनयपत्रिका लिखी, कवित्त सवैयों में कवितावली लिखी, सूक्ति पद्धति पर इन्होंने नीति के बहुत से दोहे लिखे हैं। इसलिए तुलसीदासजी को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

तुलसीदासजी की टक्कर के एक ही कवि हैं: और वह हैं महाकवि सूरदास। परन्तु सूरदास की कविता का क्षेत्र बहुत छोटा है। उसमें जीवन के थोड़े से ही पक्ष का चित्रण किया गया है। परन्तु तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है और उसमें वे ही सफल रहे हैं।

तुलसीदासजी केवल कवि ही नहीं, बल्कि साथ-साथ समाज सुधारक और धार्मिक प्रचारक भी थे। उस समय देश में एक ओर तो

इस्लाम बढ़ रहा था और दूसरी ओर निर्गुण पन्थी सन्त अपनी खण्डनात्मक वाणियों से जनता के हृदय से श्रद्धा को समाप्त किये दे रहे थे। यद्यपि निर्गुण पन्थी सम्प्रदाय इस्लाम का मुकाबला करने के लिए प्रारम्भ हुए थे, परन्तु उन्हें जनता का हृदय जीतने में सफलता न मिली। तुलसीदास ने सगुण भक्ति का प्रचार किया, जो जनता को अधिक सरलता से अपनी ओर आकृष्ट कर सकती थी। उन्हें इस काम में सफलता भी मिली।

तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी थे। यद्यपि कुछ विद्वानों ने उन्हें अद्वैतवादी बतलाया है। तुलसीदास राम की भक्ति को ही संसार सागर को तरने का एकमात्र उपाय मानते थे। उनका कथन था कि मनुष्य अत्यन्त दुर्बल और तुच्छ है; और राम अत्यन्त समर्थ और कृपालु हैं। परन्तु उनके सम्मुख सरलता और विनय से ही काम चल सकता है। सच्ची भक्ति होने से मनुष्य अवश्य ही राम की कृपा पाने का अधिकारी हो सकता है। तुलसीदासजी ने जिस भक्ति का प्रतिपादन किया है, उसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का सम्मिश्रण है। वस्तुतः इन तीनों अंगों को साथ लेकर चलने से ही मनुष्य जीवन पूर्ण हो सकता है; एक-एक अंग से नहीं।

तुलसीदास की भाषा और शैली—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, तुलसी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उनकी विद्वत्ता भी हिन्दी के अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक थी। उनका व्रजभाषा और अवधी पर समान अधिकार था। उन्होंने दोनों ही भाषाओं सफलतापूर्वक रचना की है। व्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं में संस्कृत के शब्द काफी मिलते हैं और दोनों ही भाषाओं का साहित्यिक रूप उनकी रचनाओं में प्रकट हुआ है। तुलसीदास की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और मंजी हुई है। उनकी भाषा भाव के अनुसार ही कठोर या मृदु हो जाती है।

भाषा की ही भांति तुलसीदास को विभिन्न शैलियों पर अधिकार था। उन्होंने अपने काल में प्रचलित सभी शैलियों में रच

की है। क्या दोहे चौपाई, क्या पद शैली, क्या कवित्त सवैयों की शैली और कुण्डलियों की शैली सभी में उन्होंने रचनाएं लिखी। उन्होंने नीति सम्बन्धी दोहे भी लिखे। उन्होंने प्रबन्ध काव्य भी लिखे और मुक्तक काव्य भी। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी काव्य रचना में तरह-तरह के प्रयोगों का अभ्यास करते रहते थे और नई-नई से शैली में रचना करने में उन्हें आनन्द आता था।

सूर और तुलसी की तुलना—सूर और तुलसी दोनों ही हिन्दी साहित्य के सर्वोत्तम कवि हैं। प्रायः यह प्रश्न उठा करता है कि इन दोनों में से कौन अधिक बड़ा है? यह प्रश्न जितना सरल है, इसका उत्तर दे पाना उतना ही अधिक है। हम केवल इन दोनों की तुलना ही कर सकते हैं, किन्तु अन्त में निर्णय कुछ भी नहीं दे सकते।

दोनों की समानताएं—दोनों भक्त कवि हैं और दोनों ने सगुण भक्ति को ही उत्तम माना है।

दोनों की प्रतिभा विलक्षण है। भावों को जगाने की शक्ति दोनों में ही अद्भुत है। दोनों के वर्णन अत्यन्त मनोहारी हैं। दोनों कवियों की कल्पना शक्ति और सूझ आश्चर्यजनक है।

दोनों में अन्तर—तुलसी रामभक्त हैं और सूर कृष्ण भक्त। तुलसी ने अपने भगवान की उपासना दास्य भाव से की है, सूर ने सखा भाव से। तुलसी ने भगवान का लोकरक्षक स्वरूप चित्रित किया है, सूर ने लोकरंजक रूप। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, सूर के कृष्ण लीलापुरुषोत्तम।

तुलसी का काव्य क्षेत्र विस्तृत है सूर का सीमित। पर अपने विस्तृत क्षेत्र में भी तुलसी वैसा चमत्कार नहीं दिखा पाये हैं, जैसा सूर ने अपने सीमित क्षेत्र में दिखाया है।

तुलसी एक दूरबीन की तरह हैं, जिससे जीवन का दूर-दूर का क्षेत्र दिखाई पड़ता है, पर बहुत साफ नहीं। सूर सूक्ष्मवीक्षण यंत्र की तरह

हैं, जिससे क्षेत्र तो बहुत थोड़ा दिखाई पड़ता है, पर जितना दीखता, उतना बहुत साफ दिखाई पड़ता है।

तुलसी ने विविध शैलियों में रचना की है, सूर ने केवल एक शैली में।

तुलसी ने अवधी और ब्रज, दोनों भाषाओं में कविता लिखी है, सूर ने केवल ब्रजभाषा में।

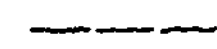
तुलसी कवि के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। पर सूर का काव्य केवल काव्य के लिए ही है, समाज सुधार का अंश उसमें नहीं है।

तुलसी का आदर साधारण जनता द्वारा अधिक हुआ है। उनके रामचरितमानस को धर्मग्रन्थ के समान पूजा जाता है। पर सूर का आदर कला-रसिकों द्वारा अधिक हुआ है। उनके पद शास्त्रीय संगीत के रूप में गाये जाते हैं।

तुलसी की अपेक्षा सूर में संगीतात्मकता अधिक है, पर तुलसी में प्रबन्ध पटुता अधिक है।

सूर मुख्यतया वात्सल्य और शृङ्गार के कवि हैं, पर तुलसी ने सभी रसों का वर्णन किया है। उसके शृङ्गार वर्णन भी बहुत मर्यादित हैं।

सूर और तुलसी दोनों के काव्य क्षेत्र लगभग अलग-अलग ही हैं, इसलिए दोनों में छोटे या बड़े का प्रश्न ही नहीं उठता। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों सर्वोत्तम हैं। दोनों ही हिन्दी साहित्य के आकाश के सूर्य और चन्द्र हैं।



मीराबाई

प्राचीन काल की हिन्दी कवयित्रियों में मीराबाई का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इनके भक्ति भाव से भरे हुए पद बहुत लोकप्रिय हुए हैं और सूरदास के पदों की तरह उन्हें भी संगीतज्ञों ने गाने के लिए पसन्द किया है। जैसी तन्मयता, भावुकता और अनुभूति की तीव्रता मीरा की रचना में पायी जाती है वैसी हिन्दी के किसी कवि की रचनाओं में नहीं मिलती। अपनी कविता के कारण मीरा 'प्रेम दिवानी' की प्रतीक बन गई है। प्रेम का जैसा दीवानापन मीरा के पदों में है, वैसा हिन्दी में दुर्लभ है।

मीरा के पिता राठौर रत्नसिंह मेड़ता के रहने वाले थे। रत्नसिंह के दादा जोधा जी ने जोधपुरनगर बसाया था। मीरा का जन्म चौकड़ी नामक गाँव में संवत् १५७३ में हुआ। कहते हैं कि बचपन में ही एक बार कृष्ण की मूर्ति को देखकर कृष्ण से इनका प्रेम हो गया था। उनका यह प्रेम जीवन भर बना रहा।

बड़ी होने पर मीरा का विवाह उदयपुर के युवराज भोजराज के साथ हुआ। विवाह के पश्चात् भी मीरा कृष्ण भक्ति में लीन रहती थी और उनका विवाहित जीवन सुखी नहीं था। कुछ ही वर्ष बाद इनके पति का देहान्त हो गया। उसके बाद तो मीरा की कृष्ण भक्ति और भी प्रबल हो उठी। मीरा का प्रेमातुर हृदय उन कठिनाइयों को सहने को तैयार न हुआ, जो हिन्दू विधवा को सहनी पड़ती हैं। वह कृष्ण के प्रेम में इतनी मग्न हो गई कि उन्हें लोकचार और लाज के बन्धन झूठे जान पड़ने लगे। इनमें बंधकर रहने से उसने इन्कार कर दिया। वह प्रेम में मग्न होकर मन्दिरों में पहुँच जाती और पुजारियों

और भक्तों के बीच में निस्संकोचभाव से मूर्ति के सम्मुख नाचने और गाने लगती। उसके ये गीत प्रेम की भावना से भरे हुए होते थे।

यों तो सभी लोग मन्दिर में जाते हैं। राजा और रानियाँ भी मन्दिरों में जाती हैं; परन्तु मन्दिरों में साधारण लोगों के सम्मुख जाकर मीरा का गाना और नाचना उनके परिवार के लोगों को बुरा लगा। उनका कथन था कि इससे राज परिवार की प्रतिष्ठा नष्ट होती है। जब बार-बार रोकने पर भी मीरा मन्दिरों में जाकर नाचने गाने से न रुकी, तो कहा जाता है कि उनके देवर ने, जो इस समय उदयपुर के महाराणा थे, मीरा को मारने के लिए विष का प्याला मीरा के पास भिजवाया। कहा जाता है कि जान बूझकर भी मीरा ने वह विष पी लिया। परन्तु उसका उन पर कोई असर न हुआ। फिर एक बार एक पिटारी में एक सांप इनके पास भेजा गया, जिसके कारण से यह मर जायँ। परन्तु जब मीरा ने उसे हाथ से पकड़ कर उठाया, तो वह शालिग्राम की मूर्ति बन गया।

मीरा अपनी हत्या के लिए किये जाने वाले इन प्रयत्नों से डरी नहीं; परन्तु उसे हर रोज की कलह से कष्ट होता था। इसलिए उसने अपना घर छोड़ दिया और द्वारका तथा वृन्दावन में भ्रमण करती हुई समय विताने लगी।

भले ही मीरा के परिवार के लोग उसके आचरण से बहुत दुखी थे, परन्तु जिन मन्दिरों में मीरा जाकर गाती नाचती थी, वहाँ के भक्त लोग उन्हें बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे और उनमें दिव्य शक्ति मानते थे। मीरा निर्भय होकर सर्वत्र आती जाती थी। जो तीनों लोकों के स्वामी कृष्ण को अपना पति मानती हो, उसे अन्य किसी पुरुष से क्या भय हो सकता था? एक बार ये वृन्दावन के एक मन्दिर के महन्त से मिलने गईं। यह महन्त ब्रह्मचारी थे और स्त्रियों की छाया से भी दूर ही रहते थे। मीरा को भी उन्होंने कहलवा दिया कि वे स्त्री का दर्शन नहीं करना चाहते। उत्तर में मीरा ने कहलवाया

रचना की ऐसी कोई प्रति नहीं मिली, जिसे प्रामाणिक समझा जा सके। मीरा के दो सौ के लगभग पद स्फुट रूप में प्राप्त होते हैं। पर उनके विषय में भी यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि वे सब मीरा के ही हैं, या मीरा ने केवल इतने ही पद लिखे थे। क्योंकि सम्भव है कि मीरा के लिखे हुए पदों में से बहुत से नष्ट हो गये हों; और यह भी सम्भव है कि मीरा के नाम से बाद में अन्य लोगों ने पद लिख कर जोड़ दिये हों। यदि यह मान भी लिया जाय कि ये सब पद मीरा ने ही लिखे थे, तो भी इनकी भाषा वैसी नहीं है, जैसी मीरा ने लिखी होगी। समय बदलने के साथ साथ इनकी भाषा भी बदलती गयी है।

मीरा के काव्य की विशेषता—मीरा की जो काव्य रचना इस समय प्राप्त होती है, वह बहुत थोड़ी है। उनके पद मुक्तक काव्य के रूप में मिलते हैं अर्थात् इन पदों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। सब पद एक दूसरे से पूरी तरह स्वतन्त्र हैं। इनमें कथा का भी कोई प्रवाह नहीं है।

परन्तु मुक्तक काव्य की जो विशेषताएं मानी जाती हैं, वे सब मीरा के पदों में पाई जाती हैं। मुक्तक काव्य के लिये गहरी अनुभूति का होना आवश्यक समझा जाता है। मीरा के पदों में अनुभूति बहुत गहरी है। प्रेम की जैसी पीर और विरह की व्यथा मीरा के पदों में मिलती है, वैसी हिन्दी साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम ऐसा तीव्र था कि उन्हें संसार की अन्य सब वस्तुएं भूल गई थीं। हंसते रोते, गाते नाचते उन्हें सदा कृष्ण की ही धुन रहती थी और यह धुन उनके पदों में बड़े सरल रूप में प्रकट हुई है।

मीरा ने अपने पद ऐसे छंदों में लिखे हैं, जिनमें पक्के रागों में गाया जा सकता है। गीतात्मकता के कारण उनकी कविता का प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया है।

मीरा अपने आपको ललिता नाम की एक गोपी का अवतार कहा करती थी। वह कृष्ण की उपासना इस रूप में करती थी कि जैसे वह उसके अपने पति हैं; उस रूप में नहीं, जिस रूप में गोकुल की गोपियां किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी रहते हुए भी कृष्ण को प्रेम करती थीं। मीरा का प्रेम 'स्वकीया' का प्रेम कहा जाता है; गोपियों का प्रेम 'परकीया' का प्रेम था। मीरा अपने आप को कृष्ण की 'जन्म जन्म की दासी' और कृष्ण को अपना 'जन्म का पति' मानती हैं। हिन्दू धर्म में पति पत्नी का सम्बन्ध इसी जन्म का नहीं, बल्कि पिछले और अगले जन्मों तक का सम्बन्ध माना जाता है।

मीरा ने कृष्ण को अपना पति मान कर रचना की; इसलिये उसमें स्पष्टता और तीव्रता अधिक आ गई। और भी कई कवियों ने अपने आपको स्त्री और कृष्ण या परमात्मा को पति मान कर कविता लिखी, पर उसमें वैसी जान और तड़प नहीं है, जैसी मीरा की रचनाओं में है। उदाहरण के लिये कबीर ने भी अपने आपको राम की पत्नी मान कर कुछ पद लिखे हैं! परन्तु पुरुष अपने आपको स्त्री रूप में कल्पना करके जैसी कविता लिख सकता है, वैसी ही कबीर की तथा उनके समान लिखने वाले अन्य कवियों की भी बन पड़ी है। उन्हें स्त्रियोचित भावों की कल्पना ही करनी पड़ी है। उन भावों की अनुभूति उन्हें कभी नहीं हुई। परन्तु मीरा ने उन भावों को स्वयं अनुभव किया था। इसीलिये इस प्रकार की कविता में मीरा इन कवियों से कहीं आगे है।

कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण और एकनिष्ठ प्रेम की भावना मीरा के पदों में इतने मधुर रूप में प्रकट हुई है कि उनके ये पद लोगों की जीभ पर चढ़े हुए हैं। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई' 'मैं तो साँवरे के रंग राती' इत्यादि इनके अनेक गीत अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। मीरा के पदों को मधुर स्वर में गा कर अनेक गायिकाओं ने

प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। मीरा के कुछ मर्मस्पर्शी पद नीचे दिए जाते हैं :

मैं विरहिन बैठी जागूं, जगत् सब सोवै री आली।
विरहिन बैठी रंग महल में मोतियन की लड़ पोवै।
इक विरहिन हम ऐसी देखी अंसुवन की माला पोवै।

कई जगह मीरा ने अपनी विरह-व्यथा को बड़े करुणाजनक रूप में प्रकट किया है; जैसे :

काढ़ि कलेजा मैं धरूँ, रे कौवा तू ले जाइ।
ज्यां देसां म्हारो पिव बसै, वे देखैं तू खाइ।

या

दरद की मारी बन बन डोलूं, बैद मिला नहीं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटै जब बैद संवरिया होय।

मीरा की कविता की सब से बड़ी विशेषता उसकी तीक्ष्णता है। जैसी भी बात उनके मन में उठती है, उसे वह बिना किसी संकोच के सीधे सादे शब्दों में कह देती हैं। उनके ये सीधे सादे शब्द ही उनकी भावना को तीव्र से तीव्र रूप में प्रकट कर पाते हैं। जैसे :

जल बल भई राख की ढेरी
अपने अंग लगा जा।
जोत में जोत मिला जा।

अन्य सभी कवियों ने अपनी भावनाओं को कुछ दबा कर और कुछ छिपा कर अपनी कविताओं में प्रकट किया है, पर मीरा ने अपने भावों को दबाने या छिपाने की बिल्कुल चेष्टा नहीं की।

कहा जाता है कि मीरा रैदास की शिष्या थीं। रैदास चमार थे और स्वामी रामानन्द के शिष्यों में से एक थे।

मीरा पर निर्गुणवादी सन्तों का प्रभाव थोड़ा बहुत अवश्य था। वैसे तो उनके पद सगुण कृष्ण के प्रति अदम्य प्रेम से भरे हुए हैं, पर कहीं-कहीं उनके पदों में हठयोगियों के पारिभाषिक शब्द 'कमल' 'बिन्दु' 'शून्य' 'अनहद नाद' इत्यादि भी आ जाते हैं। पर मीरा के ऐसे पद

बहुत थोड़े हैं; और जो हैं वे नीरस और निकम्मे हैं। मुख्यतया वे सगुण भक्ति की ही गायिका हैं।

जब मीरा घर से निकल गई और द्वारिका वृन्दावन में फिरने लगीं तब, कहा जाता है कि, एक बार उनकी ननद ऊदाबाई उन्हें मना कर वापिस लौटाने के लिए आई थीं। उन्होंने मीरा को बड़े कुल की प्रतिष्ठा की याद दिलाते हुए कहा कि तुम्हारे इस प्रकार जगह-जगह भटकने से हमारे कुल को दाग लगता है। परन्तु मीरा ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा मेरे तो इष्ट बन्धु अब साधु सन्त ही हैं और मेरे प्रिय केवल कृष्ण हैं। ऊदाबाई को निराश ही वापिस लौटना पड़ा।

मीरा की भाषा और शैली—मीरा की भाषा राजस्थानी-मिश्रित ब्रज है। उनकी भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं है। दूर-दूर तक भ्रमण करने के फलस्वरूप उनकी भाषा पर अनेक स्थानों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। लिखित रूप में न रहने से यह भाषा समय के साथ-साथ बदलती रही है। आज जिस रूप में मीरा के पद प्राप्त होते हैं, उनकी भाषा बहुत सरल और सुबोध है। कई स्थानों पर तो यह बिल्कुल बोलचाल की भाषा मालूम होती है।

मीरा की शैली प्रसाद गुण युक्त है। उनकी कविता का अर्थ सुनते ही समझ में आ जाता है। उनके भावों में स्पष्टता और तीव्रता है; उनकी भाषा में सरलता। इसी से मीरा का काव्य इतना लोकप्रिय है।

विहारी

विहारी हिन्दी साहित्य के एक महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। तुलसीदास की रामायण का प्रचार उसकी साहित्यिकता या काव्य सौंदर्य के कारण उतना नहीं हुआ, जितना उसके धार्मिक उपदेशों और सदाचार सम्बन्धी आदर्शों की स्थापना करने के कारण हुआ है। परन्तु 'विहारी सतसई' का प्रचार केवल उसके काव्य सौंदर्य के कारण हुआ है। यदि तुलसीदास के रामचरितमानस को छोड़ दें तो 'विहारी सतसई' का प्रचार हिन्दी के अन्य किसी भी ग्रंथ की अपेक्षा अधिक हुआ है। यह कहा जा सकता है कि केवल काव्य सौंदर्य के वल पर हिन्दी में सवसे अधिक लोकप्रिय कवि विहारी ही हुए हैं।

विहारी की लोकप्रियता का आधार है उनकी एकमात्र रचना 'विहारी सतसई'। इस सतसई में सात सौ इक्कीस के लगभग दोहे हैं। इनमें से अधिकांश दोहे शृंगार सम्बन्धी हैं, जिसमें तरह तरह के प्रसंग उठा कर तरह तरह की नायिकाओं के सुन्दर चित्र उपस्थित किये गए हैं। कुछ दोहे भक्ति और विनय सम्बन्धी भी हैं, तथा कुछ दोहे नीति सम्बन्धी हैं। इस एक रचना के कारण ही विहारी इतने अधिक लोकप्रिय हो गए, इससे यह वात स्पष्ट है कि कवि का गौरव इस वात से नहीं होता कि उसने कितनी रचनाएँ लिखी हैं, वल्कि इस वात से होता है कि उसकी रचनाओं में सौंदर्य कितना है।

विहारी के दोहों के चुटीलेपन की आलोचना करते हुए किसी कवि ने कहा है—

सतसइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर॥

बिहारी का जन्म ग्वालियर के निकट गोविन्दपुर नामक स्थान में हुआ था। इनका जन्म संवत् १६५२ में हुआ और मृत्यु संवत् १७२० के आस पास हुई।। ये जहांगीर और औरंगजेब के समकालीन थे। यह जयपुर नरेश महाराज जयसिंह के दरबार में रहते थे। महाराज जयसिंह से इनका सम्पर्क होने की कथा भी बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि उन दिनों महाराज अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में इतने मग्न थे कि उन्होंने राज्य कार्य देखना भी छोड़ दिया था और महल से भी बाहर नहीं आते थे। बड़ी रानी अनन्त देवी, मन्त्री तथा अन्य सामन्त सरदार इस स्थिति से बहुत चिन्तित थे; परन्तु किसी को कोई उपाय न सूझता था। जब बिहारी जयपुर पहुंचे, तो उन्हें सारी स्थिति बताई गई। बिहारी ने यह दोहा लिखकर जैसे तैसे महाराज के पास भिजवा दिया:

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस दोहे को पढ़ कर महाराज बहुत प्रभावित हुए और महल से बाहर आये। इससे बिहारी का आदर जयपुर के दरबार में बहुत बढ़ गया। महारानी अनन्तदेवी ने बिहारी को 'काली पहाड़ी' नामक गांव पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया। महाराज ने बिहारी से अनुरोध किया कि वे इसी प्रकार के सरस दोहे और भी बनायें। निश्चय हुआ कि प्रत्येक दोहे पर बिहारी को एक एक अशर्फी मिला करेगी। इस प्रकार बिहारी ने निश्चिन्त होकर अपनी सतसई की रचना की। सतसई के अन्तिम दोहे में यह बात बिहारी ने स्वयं भी लिख दी है कि उन्होंने महाराज जयसिंह के आदेश से ही सतसई की रचना की थी।

बिहारी की ससुराल मथुरा में थी और विवाह के बाद वह अपनी ससुराल में ही घरजमाई बनकर रहने लगे थे। एक दोहे में इन्होंने घरजमाई के शनैः शनैः घटते जाने वाले सम्मान का भी उल्लेख किया है। उनका निम्नलिखित दोहा उनके जीवन पर प्रकाश डालता है:

की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए सूर के पदों में अनेक पंक्तियाँ ऐसी भी पाई जाती हैं, जिनके निकाल देने पर भी पद की सुन्दरता में कोई अन्तर न पड़ेगा। परन्तु बिहारी के दोहों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। बिहारी को अपने मन का एक भाव एक ही दोहे में प्रकट करना होता था। इसीलिए उनकी रचना बहुत मंजी हुई और गठी हुई है। उसमें अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं है और यदि उसमें से एक भी शब्द निकाल लिया जाय, तो पता चलता रहेगा कि इस दोहे में से कोई आवश्यक शब्द निकल गया है और दोहे का सौंदर्य अवश्य घट जायगा।

बिहारी ने एक तरह से गागर में सागर भरकर दिखा दिया है। इसमें उन्हें अपने समय में काव्य क्षेत्र में प्रचलित रूढ़ियों से भी सहायता मिली।

बिहारी को अलंकारों का बहुत अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अपने दोहों में अनेकानेक अलंकारों का प्रयोग बहुत सुन्दरता से किया है। कहीं कहीं तो एक एक दोहे में कई कई अलंकार उलझे हुए मिल जाते हैं। बिहारी ने अधिक प्रयोग अर्थालंकारों का किया है। कहीं कहीं केवल मन की मौज के लिए शब्दालंकारों का भी प्रयोग किया गया है।

सतसई की परम्परा—सतसई लिखना बिहारी की कोई अपनी सूझ नहीं थी। उनसे पहले प्राकृत में 'गाथा सप्तशती' और संस्कृत में 'आर्या सप्तशती' लिखी जा चुकी थी। बिहारी ने केवल सप्तशती की परम्परा ही इन दो सप्तशतियों से नहीं ली, बल्कि अनेक स्थानों पर तो इन सप्तशतियों के पद्यों के भाव भी ज्यों के त्यों ले लिए हैं। परन्तु बिहारी ने अन्धी नकल नहीं की। बहुत जगह उन्होंने मूल भाव को अपनी प्रतिभा से खूब सजा संवार दिया है।

बिहारी सतसई के बाद और कई सतसइयाँ लिखी गईं। हिन्दी की कुछ अन्य प्रसिद्ध सतसइयाँ ये हैं : तुलसी सतसई, मतिराम सतसई, वृन्द सतसई, रसनिधि सतसई इत्यादि।

बिहारी की सतसई पर पचास से अधिक टीकाएं लिखी गई हैं। इनमें से कुछ टीकाएं तो पद्य में लिखी गई हैं। सुल्तान पठान नामक एक कवि ने बिहारी के दोहों के भावों को कुण्डलियों में लिखने का यत्न किया। परन्तु ये कुण्डलियाँ पूरी नहीं हो पाईं। आधुनिक युग में पं० पद्मसिंह शर्मा और जगन्नाथदास रत्नाकर ने सतसई पर अच्छी टीकाएं की हैं।

बिहारी ने अपने दोहों में कई शास्त्रों की जानकारी प्रदर्शित करते हुए, उसका काव्य चमत्कार के लिये सुन्दर प्रयोग किया है; जैसे विरह ज्वर को हटाने के लिए उन्होंने सुदर्शन चूर्ण देने की बात लिखी है। आयुर्वेद में बुखार को हटाने के लिए सुदर्शन चूर्ण दिया जाता है। यहाँ विरह को हटाने के लिए सुदर्शन अर्थात् प्रिय का दर्शन इलाज बताया गया है। इसी प्रकार गणित में अंक के आगे बिन्दी लगा देने से उसका मूल्य दस गुना हो जाता है। जैसे १० के आगे ० लगाने पर १०० बन जाता है। गणित के इस नियम का उल्लेख करते हुए वे एक विचित्र गणित बताते हैं कि सुन्दरी के मस्तक पर बिन्दी लगा देने से उसका सौंदर्य अगणित गुणा बढ़ जाता है। इसी प्रकार दो राजाओं के होने पर जैसे राज्य में अन्धेर मचता है या किशोरावस्था और यौवनावस्था के सन्धिकाल में जैसे मन में उथल पुथल मचती है, उस प्रसंग को लेकर बिहारी ने अपनी ज्योतिष की जानकारी का परिचय दिया है और इस अंधेर की तुलना अमावस के अंधेरे से की है, जो सूर्य और चन्द्रमा के एक दिशा में मिल जाने से उत्पन्न होता है।

बिहारी ने शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने संयोग पक्ष में नायक और नायिका के मिलन के अनेक मधुर प्रसंगों की कल्पना की है और उनके चित्र से खड़े कर दिये हैं। इसी प्रकार विरह की विकलता, बेचैनी और उत्ताप का भी मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। परन्तु विरह वर्णन में कहीं-कहीं

आश्रय मिल सकता था। शिवाजी से मिलने के लिए भूषण दक्षिण की ओर चल पड़े।

भूषण की शिवाजी से प्रथम भेंट एक मन्दिर में हुई। शिवाजी ने वेश बदला हुआ था, इसलिए भूषण उन्हें पहचान नहीं सके। भूषण ने उन्हें एक कवित्त सुनाया, जो शिवाजी को बहुत पसन्द आया। कहते हैं कि शिवाजी ने बार बार आग्रह करके वह कवित्त उनसे बावन बार सुना और अन्त में पुरस्कार स्वरूप उन्हें बावन लाख रुपये प्रदान किये शिवाजी ने भूषण को अपना दरबारी कवि नियुक्त किया।

शिवाजी से भूषण को इतना धन मिला कि उन्हें किसी दूसरे की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं रही। भूषण की प्रशंसा सुनकर एक बार बुन्देलखंड के प्रसिद्ध वीर छत्रसाल ने इन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया था और जब भूषण आये, तो कहा जाता है कि इनकी पालकी में महाराज छत्रसाल ने स्वयं कंधा लगाया। इससे भूषण इतने द्रवित हुए कि उन्होंने छत्रसाल की स्तुति में भी दस कवित्त रचे भूषण ने अपने एक कवित्त में यह भी लिखा है 'शिवा कौ सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।' साथ ही उन्होंने यह भी निश्चय किया कि शिवा और छत्रसाल के अतिरिक्त वे किसी मनुष्य की स्तुति के लिए अपनी काव्य प्रतिभा का प्रयोग न करेंगे।

ऐसी भी किम्वदन्ती है कि एक बार ये दक्षिण भारत के एक राजा के दरबार में पहुंचे। वहाँ इनकी कविता सुनकर राजा ने इन्हें बहुत सा धन पुरस्कार में दिया। उसके बाद उसने यह भी कहा कि 'तुम्हें अब तक ऐसा दानी कोई न मिला होगा।'

भूषण ने तुरन्त उसका धन वापस लौटा दिया और कहा कि 'मुझे तो तुमसे बड़ा दानी मिल चुका है, परन्तु तुम्हें अब तक ऐसा कवि न मिला होगा, जिसने तुम्हारा दान वापस लौटा दिया हो।'

भूषण ने कई रचनाएँ लिखी हैं। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

(१) शिवराज भूषण (२) शिवा बावनी (३) छत्रसाल दशक (४) भूषण उल्लास (५) दूषण उल्लास (६) भूषण हजारा।

परन्तु इस समय इनके केवल शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक, ये ही ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

कवि भूषण की कविता मुख्य रूप से वीर रस की ही कविता है। इनकी ओजपूर्ण कविता को पढ़ कर एक बार तो कायर व्यक्ति की भी बाहें फड़क उठती हैं। भूषण ने युद्धों के सुन्दर वर्णन, शिवाजी की विजय और मुगलों की दुर्दशा के चित्रण में अपनी विशेष प्रतिभा प्रदर्शित की है।

इनका एक कवित्त देखिये :

इन्द्र जिमि जम्भ पर, वाड़व सुअम्भ पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है॥
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रवाह पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दंड पर, चीता मृग झुंड पर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है॥
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ वंस पर सेर सिवराज है॥

भूषण अपने समय के राष्ट्रीय कवि थे। देश प्रेम और जाति प्रेम उनकी नस नस में समाया हुआ था। कुछ लोगों ने शिवाजी की प्रशंसा करने के कारण भूषण को खुशामदी कवि कहा है। परन्तु ऐसा कहने वाले आलोचक गलती पर हैं; क्योंकि वे यह भूल जाते हैं कि भूषण ने शिवाजी की स्तुति एक आदर्श व्यक्ति के रूप में की है, जो अत्याचारी मुगलों का विरोध और नाश करने के लिये उद्यत हुए थे। जिस प्रकार तुलसी को राम के श्रेष्ठ गुणों ने मुग्ध कर लिया था, उसी प्रकार भूषण भी शिवाजी के साहस, शौर्य तथा अत्याचार का विरोध करने की भावना से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। भूषण ने शिवाजी के गुणों की

सच्ची ही स्तुति की है और सच्चे गुणों की प्रशंसा को खुशामद कहना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता।

भूषण के युग में राष्ट्रीयता का वह स्वरूप विकसित नहीं हुआ था, जो आज कल हुआ है। आजकल हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही इस देश का निवासी माना जाने लगा है और इन दोनों के मध्य प्रेम बढ़ाने की आवश्यकता अनुभव की जाती है। परन्तु भूषण के समय में यह बात नहीं थी। उस समय मुगल विदेशी समझे जाते थे और इस देश के निवासी हिन्दुओं के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त क्रूर और अन्यायपूर्ण था। इस व्यवहार के विरुद्ध समय समय पर अनेक वीरों ने संघर्ष किया; और जिन्होंने भी संघर्ष किया, वे सभी देश के जातीय और राष्ट्रीय वीरों के रूप में प्रसिद्ध होगये। महाराणा प्रताप दुर्गादास, गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी और छत्रसाल इसी प्रकार के वीर नायक थे। भूषण ने लोक नायकों के रूप में ही शिवाजी और छत्रसाल की स्तुति की। एक प्रकार से यह व्यक्तियों की स्तुति न होकर गुणों की स्तुति थी।

यदि भूषण भी अन्य राजदरबारी कवियों की भांति खुशामदभरी कविता लिखते तो उनकी रचना इतने समय बाद कहीं सुनाई न पड़ती। जैसे जनता ने अन्य सैंकड़ों खुशामदी कवियों की रचनाओं को भुला दिया, उसी प्रकार भूषण की रचना भी भुला दी जाती। परन्तु वह भुलायी नहीं गई और आज भी वह जनता द्वारा आदर और आनन्द के साथ पढ़ी जाती है, यह इस बात का प्रमाण है कि वह जनता की भावनाओं के अनुकूल थी। जनता ने उसे पसन्द किया था। जो कवि जनता की भावनाओं को अपनी भावना बना कर कविता लिखता है, वही राष्ट्रीय कवि कहलाता है। इस दृष्टि से भूषण को निस्सन्देह राष्ट्रीय कवि कहा जा सकता है, क्योंकि उनकी भावनाएँ न केवल उनके समय की जनता की भावनाओं के साथ पूरी तरह मेल खाती थीं, बल्कि आज की जनता के मन के साथ भी उन भावनाओं का पूरा मेल है।

भूषण ने अपनी कविता में केवल हिन्दू जाति के सद्गुणों का ही बखान नहीं किया, बल्कि उन्होंने हिन्दुओं की आपस की फूट की निन्दा की है। इस फूट का जो फल हिन्दुओं को भोगना पड़ा, उसका विषादपूर्ण वर्णन भी उनकी कविता में मिलता है। वे हिन्दू जाति को उन्नत और विजयी देखना चाहते थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी कविताओं ने अनेक हिन्दू वीरों को प्रेरणा प्रदान की।

भूषण की कविता की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने शिवाजी के उन्हीं गुणों को बढ़ाकर वर्णन किया है, जो इतिहास प्रसिद्ध हैं। शिवाजी के गुणों के विषय में उनके विरोधियों ने भी प्रशंसासूचक बातें लिखी हैं। उन्हीं गुणों का काव्यपूर्ण वर्णन भूषण ने किया है। अपने मन से कपोलकल्पित गुण उन्होंने शिवाजी पर नहीं थोप दिये हैं।

भूषण ने थोड़े से पद शृंगार सम्बन्धी भी लिखे हैं। परन्तु उनकी यह शृंगारिक रचना बहुत थोड़ी और साधारण कोटि की है। शृंगार वर्णन में उन्हें सफलता नहीं मिली।

अपने शिवराज भूषण नामक ग्रंथ में भूषण ने अपने आचार्यत्व का भी प्रदर्शन किया है। अर्थात् उन्होंने रसों, अलंकारों और नायिका ंदों के लक्षण और उनके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। परन्तु आचार्य ी दृष्टि से भूषण लगभग असफल रहे हैं। कारण कि उनके लक्षण ायः अस्पष्ट और उदाहरण कहीं कहीं गलत भी हैं।

भूषण की भाषा——भूषण ने अपनी कविता ब्रजभाषा में लिखी है। उनकी भाषा तो बहुत कठिन नहीं है परन्तु छन्द और अनुप्रास के लिये अनेक स्थानों पर उन्होंने शब्दों को बहुत तोड़ा मरोड़ा है। इस कारण कई जगह अर्थ समझने में कठिनाई हो जाती है। उन्होंने अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग भी काफी किया है।

भूषण की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ओजस्विता है। उनका शब्दों का चुनाव और भाषा का प्रवाह ऐसा है कि अपने आप ही मनुष्य का हृदय वीरता की उमंग से भर उठता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी साहित्य का जन्मदाता कहा जाय तो अनुचित न होगा। खड़ी बोली का प्रारम्भ वस्तुतः इन्होंने ही किया। इनसे पहले गद्य और पद्य दोनों ही ब्रज भाषा में लिखे जाते थे। भारतेन्दु ने पहले पहल खड़ी बोली में लिखना प्रारम्भ किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र भी अच्छे लेखक थे। उन्होंने चालीस से अधिक ग्रन्थ लिखे थे। उनका अपना अच्छा पुस्तकालय था, जिसमें संस्कृत और हिन्दी के अनेक उपयोगी ग्रन्थ संगृहीत थे। बाबू गोपालचन्द्र कविता में अपना उपनाम गिरिधरदास लिखा करते थे। इनके घर पर साहित्यिकों और कवियों का जमघट प्रायः बना ही रहता था। इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म ऐसे परिवार में हुआ, जिसमें काव्य और साहित्य की चर्चा पहले से ही चलती रहती थी। साहित्य प्रेम का संस्कार उन्हें अपने पिता से ही प्राप्त हुआ।

भारतेन्दु का जन्म भाद्रपद शुक्ला ५ संवत् १९०७ को काशी में हुआ। भारतेन्दु को बहुत थोड़ी आयु प्राप्त हुई, क्योंकि पैंतीस वर्ष की अवस्था में सम्वत् १९४१ में माघ कृष्णा ६ को उनका स्वर्गवास हो गया।

भारतेन्दु में बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा थी। कहते हैं कि पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने एक दोहा बना कर अपने पिता को सुनाया था।

भारतेन्दु की माता का देहान्त भारतेन्दु की पाँच वर्ष की आयु में और पिता का देहान्त भारतेन्दु की आठ वर्ष की आयु में हो गया

था। यदि उनके सिर पर माता पिता की स्नेहमयी छाया और देर तक रहती, तो भविष्य क्या होता, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। परन्तु भारतेन्दु ने इन विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी प्रतिभा को मुरझाने न दिया।

भारतेन्दु के परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। इनकी शिक्षा दीक्षा घर पर ही हुई। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी -ये चारों भाषाएं इन्होंने घर पर ही रह कर पढ़ीं। बाद में ये क्वीन्स कालेज में भी भर्ती हुए परन्तु कालेज में इनका मन नहीं लगा और इन्होंने कालेज छोड़ दिया। तेरह वर्ष की आयु में इनका विवाह हो गया। पन्द्रह वर्ष की आयु में वह सपरिवार जगन्नाथपुरी की यात्रा करने गये। इस यात्रा से उन्हें धार्मिक पुण्य प्राप्त हुआ या नहीं, यह तो पता नहीं, किन्तु बंगाल की साहित्यिक प्रगति से उनका परिचय अवश्य हो गया। उन्हें यह अनुभव हुआ कि हिन्दी में उस प्रकार का रोचक और उपयोगी साहित्य नहीं है, जैसा बंगला में है। इससे प्रभावित हो कर उन्होंने बंगला पुस्तकों का अनुवाद करने का विचार किया।

सत्रह वर्ष की आयु में भारतेन्दु ने एक पत्रिका निकालनी शुरू की, जिसका नाम 'कवि वचन सुधा' था। पहले तो इसमें प्राचीन कवियों की रचनाएं ही प्रकाशित होती थीं, पर बाद में गद्य लेख भी छपने लगे। पाँच साल बाद उन्होंने एक और पत्रिका निकाली, जिसका नाम 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' था। बाद में इसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया। इस पत्रिका में पहले पहल खड़ी-बोली का गद्य परिष्कृत रूप में सामने आया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अत्यन्त उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। इनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी, परन्तु लापरवाही से व्यय करने पर तो कुबेर का कोप भी समाप्त हो जाता है। भारतेन्दु के पास जो भी कोई कवि या लेखक पहुँच जाता था, उसको वे दिल खोल कर सहायता

करते थे। उन दिनों प्रकाशन का कार्य भी घाटे का ही सौदा था। और भी न जाने कितने लोकोपकार के कार्यों में भारतेन्दु का धन व्यय होता था। जब इन्हें कोई समझाता कि आप अपने व्यय में कमी करें, तो यह कहा करते कि 'यह लक्ष्मी हमारे पूर्वजों को खा गई है। यदि इसका वस चला तो यह मुझे भी खा जायगी। पर इससे पहले ही मैं इसे खाकर समाप्त कर डालना चाहता हूँ।'

इस प्रकार निरन्तर उदारतापूर्वक दान देते रहने का फल यह हुआ कि अन्त में भारतेन्दु की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई और इन्हें दूसरे लोगों से उधार ले ले कर निर्वाह करना पड़ा। ऐसे समय उनके कुछ इष्ट मित्रों ने उनकी सहायता की; अन्यथा भारतेन्दु को कितने कष्ट भुगतने पड़ते, कहा नहीं जा सकता।

भारतेन्दु ने गद्य और पद्य दोनों में रचना की। पद्य इन्होंने व्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में लिखा। गद्य में इन्होंने नाटक, इतिहास तथा लेख सभी कुछ लिखे। एक प्रकार से इनका ध्यान हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति की ओर था। भारतेन्दु की रचनाएं निम्नलिखित हैं:

(क) नाटक—१. सत्य हरिश्चन्द्र २. चन्द्रावली नाटिका ३. भारत दुर्दशा ४. नील देवी ५. अंधेर नगरी ६. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ७. विषस्य विषमौषधम् ८. सती प्रथा और ९. प्रेम योगिनी।

(ख) अनूदित नाटक—१. मुद्राराक्षस २. धनंजय विजय ३. रत्नावली नाटिका ४. कर्पूर मंजरी ५. विद्यासुन्दर ६. भारत जननी ७. पाखण्ड विडम्बन और ८. दुर्लभ बन्धु।

(ग) काव्य—भारतेन्दु ने ४१ काव्य ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें भक्ति, शृङ्गार तथा राष्ट्रीयता सम्बन्धी रचनाएं हैं।

(घ) निबन्ध और आख्यान—१. परिहास पंचक २. काश्मीर कुसुम ३. महाराष्ट्र देश का इतिहास ४. रामायण का समय ५. [illegible] ६. बादशाह दर्पण इत्यादि।

भारतेन्दु ने अपने इतने छोटे से जीवनकाल में इतना अधिक साहित्य लिखा था कि एक विद्वान् ने तो उन्हें 'लिखने की मशीन' कहा था।

भारततेन्दु की विचारधारा---जिस समय भारतेन्दु ने होश सम्हाला, उस समय देश के पढ़े लिखे वर्ग पर अंग्रेजी सभ्यता और साहित्य का प्रभाव छाने लगा था। अंग्रेजों की नीति हिन्दु और मुसलमानों में फूट डाल कर उन्हें आपस में लड़ा कर उनके ऊपर शासन करते रहने की थी। क्योंकि मुसलमान संख्या में कम थे और अंग्रेजों के अधिक भक्त थे, इसलिये अंग्रेज हर तरह से मुसलमानों को बढ़ावा देते थे। सरकारी नौकरियों में तो मुसलमानों को अधिक स्थान दिये ही जाते थे. इसके साथ ही हिन्दी के मुकाबले में उर्दू को अधिक बढ़ावा दिया जा रहा था, क्योंकि वह गलत या सही मुसलमानों की भाषा समझी जाती थी। कचहरियों की भाषा उर्दू बनादी गयी और विद्यालयों में हिन्दी की अपेक्षा उर्दू को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया। हिन्दी उर्दू के मुकाबले में पिछड़ती जारही थी और उसी अनुपात में हिन्दू जाति भी मुसलमानों की तुलना में पिछड़ रही थी। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द ने महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया था। साहित्य क्षेत्र में नेतृत्व भारतेन्दु के हाथ में रहा। भारतेन्दु ने हिन्द्री की उन्नति के लिये जीजान से यत्न किया और आज जो हिन्दी सारे देश की राष्ट्र भाषा बन सकी है, उसका बहुत कुछ श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही है।

भारतेन्दु ने अपने आप तो साहित्य रचना की ही, परन्तु उनका इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने अपने आस पास साहित्यकारों का एक अच्छा खासा मंडल तैयार कर लिया था। भारतेन्दु दूसरे साहित्यकारों को भी निरन्तर साहित्य सृजन की प्रेरणा देते रहते थे। वह केवल साहित्य-निर्माता ही न थे, बल्कि साहित्यकार-

निर्माता भी थे। उनकी मंडली में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, पं० बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, ठाकुर जगमोहनसिंह इत्यादि कई लेखक थे, जिन्होंने भारतेन्दु से प्रेरणा प्राप्त की थी। भारतेन्दु के स्वर्गवास के उपरान्त भी ये लेखक साहित्य सृजन करते रहे और हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग देते रहे।

भारतेन्दु का देश प्रेम—भारतेन्दु ने यद्यपि राज भक्ति सम्बन्धी कई कविताएं लिखी हैं, परन्तु देश की दुर्दशा से उनका मन दुःखी होता था और देश से निरन्तर धन बाहर चला जा रहा है, यह बात उन्हें चुभती थी। अपने समाज में प्रचलित कुरीतियों को हटाने के लिये उन्होंने बहुत उद्योग किया। धार्मिक पाखंड, अंध विश्वास, बाल विवाह, छुआछूत समुद्र यात्रा का निषेध इत्यादि अनेक कुरीतियों के विरुद्ध उन्होंने अपनी आवाज उठाई। स्त्रियों की शिक्षा के लिये भी उन्होंने बहुत यत्न किया। इसके लिये उन्होंने एक पत्रिक भी निकाली, जिसका नाम 'बालाबोधिनी' था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी अनेक रचनाओं में देश की दुर्दश का वर्णन किया और अपने देश के सुनहले अतीत की याद दिलाई बाद में देश प्रेम सम्बन्धी रचनाओं के कारण अंग्रेजी सरकार भी उ पर क्रूर दृष्टि रखने लगी थी।

भारतेन्दु की रचनाओं में एक विचित्र प्रकार की मस्ती, उल्ला और भावुकता पाई जाती है। भारतेन्दु की अपनी और उस युग लेखकों की रचनाओं में जैसी सजीवता है, वैसी उनके बाद के युग लेखकों में दिखाई नहीं पड़ती।

भारतेन्दु की रचनाएं मोटे तौर पर चार प्रकार की हैं। (१) भक्ति प्रधान रचनाएं, (२) शृंगार रस की रचनाएं, (३) देश प्रेम सम्बन्ध रचनाएं, (४) समाज सुधार सम्बन्धी रचनाएं।

भारतेन्दु भक्ति के क्षेत्र में राधारानी के भक्त थे। भक्ति सम्बन रचना इन्होंने सूरदास के पदों की शैली में लिखी हैं और लगभग

हजार पद लिखे हैं। शृंगार सम्बन्धी रचनाएं इन्होंने घनानन्द और रसखान की तरह कवित्त और सवैयों में लिखी हैं। इनका प्रेम वर्णन मर्यादित और शिष्टतापूर्ण है। देश प्रेम की रचनाओं में इन्होंने अधिकतर देश की दुर्दशा और कुरीतियों पर खेद और दुःख ही प्रकट किया है। इस प्रकार की इनकी रचनाएं अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। समाज सुधार सम्बन्धी रचनाओं में इन्होंने अनेक कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

भारतेन्दु का महत्व—भारतेन्दु का हिन्दी साहित्य में महत्व इसलिये आंका जाता है, क्योंकि उन्होंने साहित्य क्षेत्र में न केवल नये विषय प्रस्तुत किये, बल्कि भाषा और शैली को भी नया रूप प्रदान किया। भारतेन्दु से पहले सौ वर्षों में कोई ऐसा बड़ा कवि हिन्दी में न हुआ था, जो साहित्य में सर्ज बना बनाये रखता। भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य में नई चेतना उत्पन्न की। रीतिकालीन शृंगारी कविता का मुंह उन्होंने नई दिशा में मोड़ दिया और देश प्रेम तथा समाज सुधार सम्बन्धी कविता हिन्दी में प्रारम्भ हुई। इसी तरह भारतेन्दु से पहले हिन्दी का गद्य बहुत ही अविकसित दशा में था। राजा शिवप्रसाद, इंशाअल्ला खां, लल्लूलाल और सदासुखलाल, ने हिन्दी गद्य का प्रारम्भ तो कर दिया था, परन्तु उन सभी की हिन्दी लड़खड़ाती हुई हिन्दी थी, जो या तो पंडिताऊपन लिये हुए थी या फिर उर्दू से दबी हुई थी। राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी अवश्य लिखी थी, परन्तु उसमें वैसी सरलता और सजीवता न थी, जो भारतेन्दु की हिन्दी की विशेषता थी। भारतेन्दु ने हिन्दी के गद्य और पद्य दोनों के ही रूप को ऐसा निखार दिया, कि उसमें सब प्रकार के भावों प्रकट कर पाना सम्भव हुआ। अपनी इसी देन के कारण हिन्दी के निर्माताओं में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य में एक नये युग और नई शैली का प्रारम्भ किया। प्रसाद जी ने हिन्दी में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानियां और निबन्ध सभी क्षेत्रों में रचना की, परन्तु नाटक और काव्यों में उन्हें विशेष सफलता मिली। प्रसाद जी हिन्दी में छायावादी और रहस्यवादी काव्यधारा के सबसे प्रमुख कवि माने जाते हैं।

प्रसाद जी का जन्म संवत् १९४६ में माघ शुक्ला १० को काशी में हुआ था। उनके पिता का नाम देवीप्रसाद था। जब प्रसाद जी की आयु केवल ९ वर्ष की थी, तभी उनके पिता का देहावसान हो गया था। प्रसाद जी ने शिक्षा घर पर रह कर ही प्राप्त की और संस्कृत तथा हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। उन्होंने मध्यकालीन इतिहास का विशेष रूप से अध्ययन किया था और उसी काल को लेकर उन्होंने कई ऐतिहासिक नाटकों की रचना भी की।

प्रसाद जी के परिवार की आर्थिक स्थिति पहले बहुत अच्छी थी, परन्तु बीच में यह बिगड़ गई। परन्तु बाद में यह फिर सुधर गई। प्रसाद जी को अन्त में क्षय हो गया था और संवत् १९९४ में कार्तिक शुक्ला ११ को इसी रोग के कारण उनका देहान्त हो गया।

प्रसाद जी ने बारह वर्ष की आयु में अपनी माता के साथ तीर्थ यात्रा की थी। इस यात्रा में ही उन्हें प्रकृति के सौंदर्यदर्शन का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा में उन्होंने पुष्कर, ओंकारेश्वर इत्यादि के दर्शन किये थे। इस यात्रा के बाद प्रसाद जी को प्रकृति के निकट सम्पर्क में आने का अवसर नहीं मिला।

रचनाएं—प्रसाद जी की रचनाएं निम्नलिखित हैं;

(१) उपन्यास—कंकाल, तितली और इरावती (अपूर्ण)

(२) नाटक—राज्यश्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, जन्मेजय का नागयज्ञ, एक घूंट, चित्राधार, इन्द्रजाल आदि।

(३) कहानी संग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, इन्द्रजाल।

(४) काव्य—कानन कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व, आंसू, झरना, लहर, कामायनी।

(५) निबन्ध काव्य और कला।

प्रसाद नाटककार के रूप में—प्रसाद जी के नाटकों ने हिन्दी के साहित्य में एक नया युग उपस्थित किया। इनके पहले हिन्दी में मौलिक नाटक बहुत कम थे और यदि थे भी तो उनमें धार्मिकता और पौराणिकता बहुत होती थी एक दूसरे प्रकार के नाटक हल्के पारसी रंगमंच के से नाटक होतें थे। इन नाटकों की भाषा भी अपरिष्कृत उर्दू के शब्दों से भरी हुई खिचड़ी भाषा होती थी। प्रसाद जी ने अपने सभी नाटक इतिहास को पृष्ठ भूमि बना कर लिखे। उन्होंने हिन्दी नाट्यकला को बिलकुल नया स्वरूप दे दिया। उनके नाटकों में बाह्य द्वन्द्व की प्रधानता नहीं, बल्कि मानसिक द्वन्द्व का चित्रण अधिक है। प्रसाद जी के इन नाटकों को पढ़ कर यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक नाटक लिखने के लिये उससे सम्बद्ध काल के इतिहास, उस समय के रीति रिवाजों और रहन सहन के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना लेखक के लिये बहुत आवश्यक होता है। प्रसाद जी ने अपने अध्ययन द्वारा यह सब जानकारी प्राप्त की थी और उसका प्रयोग उन्होंने अपने नाटकों में किया है।

प्रसाद जी के नाटकों के विषय में यह कहा जाता है कि वे रंगमंच पर खेले नहीं जा सकते। यह बात ठीक है। प्रसाद जी ने नाटक अभिनय के लिये नहीं लिखे, बल्कि पढ़ने के लिये लिखे हैं। लिखने समय

उन्होंने रंगमंच की आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा। इसके अतिरिक्त इन नाटकों की भाषा भी अनेक स्थानों पर इतनी क्लिष्ट है कि अत्यधिक सुशिक्षित वर्ग ही अभिनय के समय बोली जाने पर उसे समझ सके, तो समझ सके; साधारण शिक्षित जनता के लिये भी उसे समझ पाना कठिन है। फिर भी इतना अवश्य है कि इन नाटकों में भारत के विगत इतिहास की मनोरम झांकियां प्रस्तुत की गई हैं और मनोभावों का द्वन्द्व अच्छा चित्रित किया गया है।

प्रसाद जी ने बौद्ध साहित्य ब्राह्मण साहित्य दोनों का ही अध्ययन किया था और दोनों ही साहित्यों से वह प्रभावित हुए दिखाई पड़ते हैं। नाटकों में उनकी बौद्ध विचारधारा अधिक जोर पकड़ गई है, जबकि कामायनी में वह ब्राह्मण साहित्य की विचारधारा से प्रेरित दिखाई पड़ते हैं।

प्रसाद जी ने एक एकांकी नाटक भी लिखा था, जिसका नाम है 'एक घूंट'। यह आधुनिक शैली का हिन्दी में पहला एकांकी नाटक था।

प्रसाद जी ने तीन उपन्यास लिखे हैं, पर उनमें से 'इरावती' अपूर्ण है। अपनी कविताओं में और नाटकों में उन्होंने कल्पना को अधिक प्रधानता दी है। परन्तु अपने उपन्यासों में उन्होंने जीवन के कुत्सित यथार्थ रूप का चित्रण अधिक किया है। कुत्सित यथार्थ का चित्रण करने के बाद उसके सुधार के लिये प्रसाद जी अपने उपन्यासों में कोई सुझाव प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। उपन्यासकार के रूप में प्रसाद जी का विशेष महत्त्व नहीं है।

गोचर होता है। इनकी कुछ कहानियां वर्तमान समाज के चित्रण से सम्बद्ध हैं और कुछ प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास को आधार बना कर लिखी गई हैं। इनकी कहानियों में भावुकता और कवित्व की प्रधानता है।

प्रसाद जी ने कई निबन्ध भी लिखे थे और उनके निबन्ध गम्भीर तथा विद्वत्तापूर्ण हैं। 'काव्य और कला' में उनके आठ निबन्ध संगृहीत हैं।

प्रसाद जी कवि के रूप में—परन्तु प्रसाद जी का सबसे अधिक महत्व कवि के रूप में आंका जाता है। उनके काव्यों में सबसे ऊँचा स्थान 'कामायनी' का है, जो एक महाकाव्य है। 'कामायनी' के अतिरिक्त 'झरना', 'आंसू' और 'लहर' ये तीन कविता संग्रह अधिक ासिद्ध हैं।

'झरना' इनमें से अपेक्षाकृत पहले की रचना है। इसमें प्रसाद जी ने प्रकृति प्रेम सम्बन्धी कविताएँ लिखी हैं, और कुछ कविताएँ कुछ प्रेम सम्बन्धी हैं। इन कविताओं में उनकी भावुकता-सुन्दर रूप में प्रकट हुई है।

'आंसू' नामक काव्य रचना में प्रसाद जी ने विरह व्यथा का चित्रण किया है। इस काव्य में कवि की तीव्र अनुभूतियां प्रकट हो उठी हैं। लौकिक प्रेम और विरह के साथ आंसू में कहीं-कहीं आध्या-त्मिक विरह के भी सुन्दर संकेत मिलते हैं, जिसके कारण इसे हस्यवादी काव्य कहा जा सकता है।

'लहर' प्रसाद जी की कविताओं का एक और विकसित संग्रह है। ाकी कविताएँ गीत प्रधान हैं। इनमें कवित्व के साथ-साथ संगीत पुट भी है। इसमें प्रसाद का छायावादी और रहस्यवादी रूप और ंक स्पष्ट रूप में प्रकट हुआ है।

'कामायनी' एक महाकाव्य—प्रसाद जी की सर्वोत्तम रचना

कामायनी समझी जाती है, जो एक महाकाव्य है। यह पन्द्रह सर्गों में विभक्त है। इसकी कथा निम्नलिखित है :

पहले संसार में देव सभ्यता थी। देवलोक खूब आनन्द से रहते और विलासपूर्ण जीवन बिताते थे। एक बार महान् जल प्रलय हुई, जिसमें पृथ्वी डूब गई और देवताओं के नगर नष्ट हो गये। मनु को छोड़कर और समस्त देव प्रजा समाप्त हो गई। मनु हिमालय पर रहते हुए यज्ञ करने लगे। उनकी भेंट काम की पुत्री श्रद्धा से हुई। दोनों में प्रेम हो गया। जब श्रद्धा गर्भवती हुई तो मनु ऐसे यज्ञ करने लगे, जिनमें पशुओं की हिंसा होती थी। श्रद्धा को उनका यह सब कर्म अच्छा नहीं लगता था। वह अपने भावी पुत्र के आनन्द के लिये तरह-तरह की सुखद वस्तुओं का संचय करने लगी। इससे मनु को ईर्ष्या हुई और वह उसे छोड़कर चल दिये। घूमते-फिरते मनु सारस्वत प्रदेश में पहुँचे। यहां की रानी इड़ा (बुद्धि) थी। इड़ा के साथ सहयोग करके मनु उस प्रदेश के राजा बन गये और सारस्वत प्रदेश में तरह-तरह के उद्योग-धन्धे विकसित होने लगे और सब प्रकार की भौतिक उन्नति होने लगी। धीरे-धीरे मनु के मन में अहंकार जाग उठा। उन्होंने इड़ा पर भी अधिकार करना चाहा और उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा। इड़ा ने विरोध किया। प्रजा विद्रोह कर उठी और युद्ध में मनु घायल और मूर्छित होकर गिर पड़े।

श्रद्धा ने स्वप्न में मनु पर बीतती हुई ये सब दुर्घटनाएँ देखीं और वह अपने पुत्र मानव को साथ लेकर मनु को ढूँढती हुई वहाँ आ पहुँची। उसे देखकर मनु को पश्चात्ताप हुआ। उन्हें अपने पुराने बीते हुए आनन्दमय दिनों की याद हो आई।

रात के समय मनु चुपचाप उठकर न जाने किस ओर चल देते हैं। अगले दिन श्रद्धा भी मानव को इड़ा के हाथ सौंपकर मनु को ढूँढने चल देती है। श्रद्धा को मनु सरस्वती के तट पर मिलते हैं और उसके बाद वे दोनों हिमालय के ऊपर चढ़ने लगते हैं। मार्ग

में इच्छा, कम और ज्ञान के तीन 'पुर' दिखाई पड़ते हैं। उसके आगे चलकर वे आनन्द लोक में पहुँच जाते हैं। उसी समय इड़ा भी मानव को साथ लिये वहाँ पहुँच जाती है और सब ओर आनन्द ही आनन्द लहरा उठता है।

कामायनी के पात्र दुहरे रूप में हमारे सामने आते हैं। एक तो मनु और मानव, इड़ा और श्रद्धा उन पुरुषों और स्त्रियों के नाम हैं, जो इस महाकाव्य के पात्र हैं। परन्तु साथ ही मनु मन का, श्रद्धा प्रेम भावना की, इड़ा तर्क बुद्धि की और मानव मनुष्य का प्रतीक है। प्रसाद जी ने पुस्तक की भूमिका में स्वयं इन दोनों अर्थों को मानने की ओर संकेत किया है। उनके कथनानुसार मुख्य अर्थ तो इन्हें मनुष्य पात्र ही मान कर निकालना चाहिये, परन्तु इसके साथ ही यदि दूसरा कोई संकेतिक अर्थ भी निकल आये तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

'कामायनी' में प्रसाद जी ने यह बात सामने रक्खी है कि जब तक इच्छा, ज्ञान और कर्म तीनों अलग-अलग रहते हैं, तब तक संसार में संघर्ष और कष्ट रहता है। जब इच्छा, ज्ञान और कर्म परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं, तभी आनन्द और कल्याण की प्राप्ति होती है। 'कामायनी' को मानव विकास का काव्य कहा जाता है।

यद्यपि कामायनी को महाकाव्य माना जाता है, फिर भी इसमें कई दोष हैं। इसकी कथा महाकाव्य के उपयुक्त नहीं है। साथ ही कथा बहुत ढीली-ढाली है और कई जगह तो कथा का सूत्र समाप्त ही हो जाता है। महाकाव्य की दृष्टि से यह एक बड़ा दोष है।

यद्यपि प्रसाद जी ने कामायनी को जायसी के पद्मावत की तरह अन्योक्ति काव्य या रूपक काव्य बनाने का यत्न किया है, परन्तु कामायनी का सांकेतिक अर्थ वैसा सरस नहीं बन पड़ा, जैसा जायसी के पद्मावत में बन पड़ा है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के तीन युग माने जाते हैं। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और प्रसाद युग। द्विवेदी युग की विशेषता यह थी कि उसमें भाषा का व्याकरण की दृष्टि से काफी सुधार हो गया था। इसी प्रकार भावों में भी लेखकों की रुचि शृंगार से हटकर समाज सुधार और देश प्रेम सम्बन्धी रचनाओं की ओर हो गई थी। मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि समझे जा सकते हैं। इस युग की रचनाओं में सरसता बहुत कम और इतिवृत्तात्मकता (तथ्य वर्णन) बहुत अधिक थी। यह बात मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं को पढ़कर स्पष्ट हो जाती है। इन दिनों बंगाल में रवि बाबू की धूम थी और उनकी रहस्यवादी रचना गीतांजलि पर उन्हें नोबल पुरस्कार मिल चुका था। इन भाव प्रधान रहस्यवादी रचनाओं का प्रसाद जी पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी हिन्दी में उसी प्रकार के भाव और वैसी ही ललित मधुर पद रचना लाने का प्रयत्न किया जैसी बंगला भाषा में प्रचलित थी। प्रसाद युग की यही बड़ी विशेषता है कि इस युग में बंगला साहित्य के अनुकरण में रहस्यवादी और छायावादी भाव हिन्दी में लाये गये और कोमलकान्त पदावली की ओर लेखकों का झुकाव अधिक रहा।

रहस्यवादी भावनाएँ अपने आप में बहुत कुछ अस्पष्ट होती हैं। उस पर प्रसादजी तथा उनके अनुकरण में लिखने वाले अन्य छायावादी कवियों ने भाषा की सुबोधता का ध्यान और भी कम रखा। कई जगह अव्ययों और विभक्तियों का प्रयोग उन्होंने छोड़ ही दिया। यह केवल भाषा को कर्ण मधुर और ललित बनाने के लिए किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भाषा कठिन और जटिल हो गई। पदों का अर्थ निकाल पाना कठिन हो गया। प्रसाद जी की कविता के बारे में बहुत बार कहा जाता है कि उसमें 'प्रसाद गुण का अभाव' है। यह बात बहुत हद तक ठीक है।

द्विवेदी युग में कुछ कवि तो नग्न शृंगार की रचनाएँ लिख रहे

थे और कुछ दूसरे लोग शृंगार से एकदम दूर भागते थे। प्रसाद जी ने दोनों के बीच का मार्ग अपनाया। इन्होंने शृंगार का वर्णन तो किया, परन्तु बहुत सुधरे हुए और सुरुचिपूर्ण ढंग से किया।

प्रसाद जी बहुत भावुक और कल्पना प्रिय कवि थे। वे कल्पना की बहुत ऊँची उड़ान लेते थे। कल्पना कविता में जान डाल देती है। परन्तु प्रसाद जी की ये कल्पनाएँ कहीं कहीं बहुत क्लिष्ट और जटिल हो गई हैं। कहीं कहीं भाव भी बहुत सूक्ष्म और अस्पष्ट हो गये हैं। इस कारण कई जगह पाठक को उनकी कविता का रस लेने में कठिनाई होती है। इसे कविता का दोष माना जाता है।

प्रसाद जी ने तुकान्त और अतुकान्त दोनों तरह के छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने अनेक सुन्दर गीत भी लिखे हैं।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त आजकल हिन्दी के 'राष्ट्र कवि' कहे जाते
आप द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। द्विवेदी युग की कविता में
विशेषताएँ पाई जाती थीं, वे गुप्त जी की कविता में बहुत अ
स्पष्ट रूप से पाई जाती हैं। गुप्त जी की कविता बहुत सरल अं
सुबोध होती है। उनकी कविता बहुत कुछ आदर्शवाद से प्रेरित हो
है। इन्हीं कारणों से गुप्त जी अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं।

गुप्त जी झांसी जिले में स्थित चिरगाँव नामक कस्बे के निवा
हैं। आपका जन्म संवत् १६४३ में हुआ था। आपके पिता स
रामचरण गुप्त भी बहुत अच्छे कवि थे। वे वैष्णव भक्त थे अं
उनके लिखे गीत बहुत सरस और मधुर होते थे। राम की भक्ति
संस्कार गुप्त जी को अपने पिता से ही प्राप्त हुआ, जो आगे चल
उनके काव्यों में प्रकट हुआ। जिस प्रकार भक्ति कालीन कवियों
तुलसीदास राम से प्रभावित थे, उसी प्रकार आधुनिक कवियों में. गु
जी को राम का आदर्श बहुत प्रिय लगा है। साकेत काव्य में यद्य
उन्होंने उर्मिला को मुख्य नायिका बनाया है, परन्तु सारे काव्य पर रा
इस तरह छाये हुए हैं कि अन्य सब पात्र गौण हो गये हैं। इस
कारण यही है कि मैथिलीशरण जी राम के बहुत अधिक भक्त हैं।

मैथिलीशरण जी के चार भाई और हैं। इनमें से एक सियारा
शरण गुप्त हैं, जो हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। उनकी कविता मैथिल
शरण गुप्त की अपेक्षा कहीं अधिक सरस होती है। गुप्त जी के अन
भाई व्यापार वाणिज्य का वंशागत व्यवसाय करते हैं।

गुप्त जी ने अधिकतर शिक्षा घर पर रहकर ही प्राप्त की है। इनके पिता ने इन्हें झाँसी में एक विद्यालय में भरती भी कराया था, परन्तु वहाँ गुप्त जी का मन न लगा। इसलिए विद्यालय की शिक्षा बीच में ही छूट गई। अपने पिता की देखा देखी यह स्वयं भी कविता लिखने का यत्न करने लगे। इस यत्न में इन्हें सफलता भी मिली।

उन दिनों आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक थे। गुप्त जी अपनी कविताएँ सरस्वती को भेजने लगे। द्विवेदी जी को ये कविताएँ पसन्द आईं। उन्होंने गुप्त जी को बढ़ावा दिया। वह इनकी कविताओं को सुधार कर 'सरस्वती' में नियमित रूप से छापने लगे। उस युग में नई शैली में कविता लिखने वाले लोग बहुत कम थे। 'सरस्वती' ने गुप्त जी को शीघ्र ही प्रसिद्ध कर दिया।

गुप्त जी के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। उन्हें अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिए प्रकाशकों के द्वार पर भटकना नहीं पड़ा। अपनी रचनाओं का प्रकाशन उन्होंने स्वयं किया। इससे एक ओर तो उनकी रचनाएँ अच्छे रूप में छप गईं और उनका प्रचार बढ़ जाने पर गुप्त जी को आर्थिक लाभ भी हुआ। ऐसा समझा जाता है कि हिन्दी में कविता पुस्तकों का प्रकाशन एक दम घाटे का सौदा है। परन्तु गुप्त जी ने इस विचार को मिथ्या सिद्ध कर दिया है।

गुप्त जी सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनका झुकाव धर्म की ओर अधिक है। उनका अपना जीवन बहुत सादा है। उनकी रचनाओं से उनके मन में विद्यमान जाति-प्रेम और देश-प्रेम की भावना स्पष्ट हो जाती है। उनकी कविता पुस्तक 'भारत भारती' देश के अतीत गौरव, वर्तमान दुर्दशा और भविष्य के सुनहले सपनों को लेकर लिखी गई है। इस पुस्तक को अंग्रेजी सरकार ने इसलिए जब्त कर लिया था, क्योंकि इससे देश के युवकों में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होती थी। अपनी सभी रचनाओं में गुप्त जी ने सदाचार और कर्तव्य-

परायणता का समर्थन किया है। उनकी विचारधारा बहुत कुछ वही है, जो तुलसीदास की थी।

गुप्त जी की रचनाएँ—गुप्तजी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं: (१) रंग में भंग (२) जयद्रथ वध (३) पद्य प्रबन्ध (४) भारत भारती (५) शकुन्तला (६) पत्रावली (७) वैतालिक (८) पद्यावली (९) किसान (१०) अनघ (११) चन्द्रहास (१२) तिलोत्तमा (१३) पंचवटी (१४) स्वदेश संगीत (१५) गुरु तेग बहादुर (१६) हिन्दू (१७) शक्ति (१८) सैरिन्ध्री (१९) वनवैभव (२०) बकसंहार (२१) झंकार (२२) साकेत (२३) यशोधरा (२४) द्वापर (२५) सिद्धराज (२६) नहुष (२७) विकट भट (२८) मौर्य विजय (२९) मंगल भट (३०) त्रिपथगा (३१) गुरुकुल (३२) विश्ववेदना (३३) काबा और कर्बला (३४) कुणालगीत (३५) अर्जन और विसर्जन और (३६) अजित।

इनमें 'भारत भारती' का प्रचार सबसे अधिक हुआ। 'भारत भारती' उस युग की माँग थी। देश में राजनीतिक आन्दोलन छिड़ चुका था। भारतवासियों को अपनी दासता बहुत अखरने लगी थी। तरह तरह से अंग्रेजों का विरोध किया जा रहा था। उस समय गुप्त जी ने देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर 'भारत भारती' लिखी। इसमें भारतवर्ष के प्राचीन गौरव का वर्णन करते हुए अंग्रेजी शासन में हुई भारतीय दुर्दशा को हृदयद्रावक चित्रण किया गया था। 'भारत भारती' ने मैथिलीशरण गुप्त की ख्याति सब ओर फैला दी। यह पुस्तक अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थी। बाद में कांग्रेसी सरकार बनने पर जब्ती की आज्ञा हटा ली गई।

साकेत—साकेत गुप्त जी का महाकाव्य है। इस महाकाव्य की कथा रामायण से ही ली गई है। बंगला कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक लेख लिखा था—'काव्य की उपेक्षिताएँ'। उसमें उन्होंने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया था कि सीता का वर्णन तो रामायण में अन्त

तक चलता गया, परन्तु उर्मिला बेचारी उपेक्षित रह गई। इस कमी को पूरा करने के लिए मैथिलीशरण जी के साकेत की रचना की। इसमें उर्मिला के चरित्र को निखारने का यत्न किया है। राम के वन जाने पर साकेत अर्थात् अयोध्या में क्या कुछ बीता, उसी का वर्णन इस महाकाव्य में है। यद्यपि इस महाकाव्य में उर्मिला और लक्ष्मण को प्रधान पात्र बनाया गया है, परन्तु गुप्त जी राम भक्ति के कारण राम को ही अधिक प्रधान बना बैठे हैं। साकेत में उर्मिला और लक्ष्मण के चरित्र को ऊँचा उठाने में गुप्त जी को सफलता नहीं मिली।

यशोधरा—यशोधरा चम्पू काव्य है। चम्पू काव्य उसे कहते हैं जिसमें गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण रहता है। यशोधरा का कुछ भाग तो गद्य में है और कुछ पद्य में। यशोधरा में गुप्तजी ने गौतमबुद्ध की पत्नी यशोधरा का चित्रण किया है। गौतमबुद्ध तो घर से निकल गये और तपस्या कर के ज्ञान प्राप्त किया और संसार भर में प्रसिद्ध हो गये। उनके बड़प्पन को सारा संसार जानता है। परन्तु यशोधरा अपने घर में रह कर ही कितनी बड़ी तपस्या करती रही, इसे गुप्तजी ने अपने काव्य 'यशोधरा' में बताया है। यदि यशोधरा यशोधरा न होती, तो गौतम 'बुद्ध' न बन पाते। 'यशोधरा' गुप्तजी की सब से अच्छी काव्य रचना मानी जाती है। इसमें यशोधरा के त्याग और स्वाभिमान की भावनाओं का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

द्वापर—द्वापर कृष्ण कथा को लेकर लिखा गया है। इसमें गुप्तजी ने राधा कृष्ण, यशोदा, बलराम आदि के मनोभावों का अच्छा चित्रण किया है।

इसके अतिरिक्त गुप्तजी की अन्य सभी रचनाओं में उनकी काव्य कुशलता महोहर रूप में दिखाई पड़ती है। पंचवटी इनका खंड काव्य है, जिसमें राम लक्ष्मण और सीता के पंचवटी निवास का वर्णन है।

अनुवाद—गुप्तजी ने कुछ पुस्तकों के अन्य भाषाओं से अनुवाद भी किए हैं। इनमें उनका सब से अधिक प्रसिद्ध अनुवाद माइकेल मधुसूदनदत्त के मेघनाद वध का अनुवाद है। इसके अतिरिक्त उन्होंने विरहिणी व्रजांगना, वीरांगना और पलासी का युद्ध का भी बंगला भाषा से हिन्दी में अनुवाद किया है। उन्होंने अंग्रेजी से उमर खैयाम की रुबाइयों का और संस्कृत से स्वप्नवासवदत्ता नाटक का अनुवाद किया है।

गुप्तजी राष्ट्र कवि हैं—गुप्तजी ने हिन्दू जाति के गौरव का वर्णन करते हुए काफी काव्य रचना की है। भारत भारती, साकेत, द्वापर, पंचवटी इत्यादि रचनाएं उन्होंने हिन्दू जाति के गौरव से प्रेरित हो कर कीं। परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा को केवल हिन्दू जाति तक ही सीमित नहीं रक्खा। बुद्ध के प्रसंग को ले कर उन्होंने 'यशोधरा' की रचना की। सिक्खों के गुरुओं का वर्णन करते हुए उन्होंने 'गुरुकुल' की रचना की। 'काबा और कर्बला' द्वारा उन्होंने मुसलमानों के गौरव का वर्णन किया। एक प्रकार से गुप्तजी ने भारत में रहने वाली सभी जातियों को प्रसन्न करने का यत्न किया है। वे किसी एक सम्प्रदाय के के बन कर नहीं रहना चाहते, बल्कि सब के बन कर रहना चाहते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि ईसाइयों को आनन्दित करने के लिए ईसा के सम्बन्ध में भी गुप्तजी की कोई रचना तैयार हो जाय। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी ने देश की सब जातियों और सब सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व अपनी रचनाओं में किया है। इसीलिए उन्हें 'राष्ट्रकवि' भी कहा जाता है। परन्तु वस्तुतः इस तरह एक-एक सम्प्रदाय के गौरव को ले कर काव्य रचना करना परोक्ष रूप से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देना है।

गुप्तजी को राष्ट्रीय-कवि एक और कारण से भी कहा जाता है। गुप्तजी ने समय-समय पर देश में चलने वाले आन्दोलनों का साथ

दिया है और उनमें भाग लिया है। गांधीजी ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के जो उपाय बतलाये थे, उनका प्रचार गुप्तजी ने अपने काव्यों द्वारा किया। गांधीजी द्वारा चलाये गए राजनीतिक आन्दोलनों में वह जेल भी गये। इस प्रकार उनकी कविता जनता की भावनाओं के साथ-साथ चलती रही है। उनकी कविता में उन भावनाओं का चित्रण हुआ है, जो उस समय जनता के मन में विद्यमान थी। इसीलिए उन्हें राष्ट्र-कवि कहा जाता है।

आजकल गुप्तजी सन्त विनोबा तथा उनके रचनात्मक कार्यक्रम के वेपय में कविताएं लिख रहे हैं।

गुप्तजी के काव्य की विशेषताएं—गुप्तजी द्विवेदी युग के कवि हैं और इसीलिए उनकी कविता में इतिवृत्तात्मकता (तथ्य वर्णन) बहुत अधिक है। अनेक स्थानों पर तो उनकी कविता कविता न रह कर कोरी तुकबन्दी रह जाती है। परन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं है। कहीं कहीं उनकी कविताओं में बड़े कोमल भाव सुन्दर रूप में प्रकट किये गये हैं।

मैथिलीशरणजी की छन्द रचना निर्दोष होती है और तुक बिठाने में ये बहुत कुशल हैं। इनकी तुकें अलग ही पहचानी जाती हैं, क्योंकि उन्हें ठीक ठिकाने के लिए ये भाव को यथेष्ट तोड़ मरोड़ देते हैं।

गुप्तजी ने प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों ही लिखे हैं; और दोनों में उन्हें काफी सफलता मिलती है।

छायावाद और रहस्यवाद से प्रेरित हो कर गुप्तजी ने कुछ रचनाएं छायावादी ढंग की भी की हैं। युग जिस प्रकार बदलता गया, उसी प्रकार गुप्तजी भी बदलते गये। वे सदा अपने युग के साथ रहे हैं।

गुप्तजी के काव्यों में लगभग सभी रसों का अच्छा वर्णन मिलता है।

गुप्तजी ने अपनी कविताओं में आदर्शवाद को प्रोत्साहन दिया

है। उन्होंने बुरे पात्रों में भी अच्छे भावों का विकास होता हुआ दिखाया है।

गुप्तजी की भाषा और शैली--गुप्तजी की भाषा सरल होती है। उनके भाव भी सरल होते हैं। गुप्तजी की कविताएं छायावादी कवियों की तरह जटिल और दुर्बोध नहीं होती।

गुप्तजी की भाषा नीरस और शुष्क होती है। पर कहीं-कहीं गीतों में उनकी भाषा ललित और मधुर भी हो गई है। गुप्तजी ने कहीं तो कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है और कहीं एकदम प्रान्तीय शब्दों का। फिर भी गुप्तजी की भाषा इसलिए प्रशंसनीय है कि उसका अर्थ तुरन्त स्पष्ट हो जाता है।

गुप्तजी ने अनेक शैलियों में रचना की है। उन्होंने प्रबन्ध शैली में भी खण्ड काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। प्रबन्ध शैली में सारी रचना में आदि से अन्त तक एक कहानी चलती रहती है। प्रबन्ध शैली के अतिरिक्त गुप्तजी ने गीत भी लिखे हैं और गीति नाट्य भी लिखे हैं। उनकी सब से अधिक रचनाएं उपदेशात्मक शैली में हैं, जिन में देशप्रेम तथा समाज सुधार आदि के उपदेश दिए गए हैं।

महादेवी वर्मा

आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों में महादेवी वर्मा का स्थान सब से ऊंचा कहा जाता है। महादेवी वर्मा छायावादी रहस्यवादी युग की कवयित्री हैं। यह युग अब समाप्त प्राय है। महादेवीजी की रचनाओं का महत्व उनकी गीतात्मकता और रहस्यवादी भावनाओं के कारण आंका जाता है। जिस प्रकार मध्ययुग में मीरा ने रहस्यवादी कविता की थी, उसी प्रकार महादेवी ने आधुनिक युग में रहस्यवाद की 'प्रेम की पीर' से भरी कविता लिखी है। वे छायावादी युग की मीरा कही जा सकती हैं।

महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद में संवत् १९६४ में हुआ था। इनके पिता श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा भागलपुर के एक कालिज में प्रिंसिपल थे। महादेवीजी की माता श्रीमती हेमरानी देवी ने हिन्दी ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया हुआ था और भक्त कवियों की रचनाएं महादेवी ने अपने बाल्यकाल में अपनी माता से ही पढ़ी। श्रीमती हेमरानी देवी भी हिन्दी में कविता लिखा करती थीं।

महादेवीजी का विवाह नौ वर्ष की आयु में ही हो गया था। परन्तु इनका विवाहित जीवन सुखी नहीं रहा। पति से अनबन हो जाने के कारण ये उनसे अलग हो गईं और अकेली ही रहने लगीं। मिडिल, मैट्रिक, इंटरमीजियेट, बी. ए. और एम. ए. परीक्षाएं उन्होंने विवाह के बाद ही उत्तीर्ण कीं, जिस से उनकी लगन और धुन व्यक्त होती हैं। मैट्रिक परीक्षा में वे उत्तर प्रदेश के परीक्षार्थियों में सर्वप्रथम रही हैं। एम. ए. की परीक्षा इन्होंने संस्कृत विषय में उत्तीर्ण की हैं।

महादेवीजी ने अपने जीवन का बड़ा भाग स्त्री शिक्षा में लगाया है। उन्होंने प्रयाग महिला विद्यापीठ की बहुत सेवा की है और कितने ही वर्षों से बिना वेतन लिए उसका कार्य सम्हाल रही हैं।

महादेवीजी कवि होने के साथ-साथ कुशल चित्रकार भी हैं। उनकी पुस्तक 'दीपशिखा' सचित्र प्रकाशित हुई थी, जिसमें कविताओं के साथ-साथ अनेक रंगीन कलापूर्ण चित्र भी थे। उनकी चित्रकला काव्यकला से किसी प्रकार कम नहीं है। महादेवी को संगीत से भी बड़ा अनुराग है।

महादेवी को उनके 'नीरजा' नामक कविता संग्रह पर ५०० रुपये का सेकसारिया पुरस्कार और 'यामा' पुस्तक पर १२०० रुपये का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है।

आज के युग में शायद ही ऐसा कोई लेखक हो, जिस ने अपने आप को नाटक, काव्य, उपन्यास या कहानी के किसी एक ही क्षेत्र तक सीमित रखा हो। महादेवी ने भी कविता, कहानी, निबन्ध और आलोचना, सभी क्षेत्रों में लेखनी उठाई है, परन्तु उनका साहित्य में महत्व उनकी कविताओं के कारण ही है। महादेवी की रचनाएं निम्नलिखित हैं :

(१) कविता—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा। बाद में नीहार, रश्मि और नीरजा की कविताएं अलग एक 'यामा' पुस्तक में संगृहीत कर दी गई हैं।

(२) निबन्ध—अतीत के चल चित्र, शृङ्खला की कड़ियाँ।

(३) आलोचना—हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य।

'नीहार' महादेवी की पहली रचना थी। यह संवत १९८७ में प्रकाशित हुई। 'नीहार' की कविताएं रहस्यवादी भावनाओं से ओतप्रोत हैं।

महादेवी का दूसरा संग्रह 'रश्मि' नाम से संवत् १९८९ में प्रकाशित हुआ। इसमें रहस्य की भावना के साथ साथ चिन्तन का भी सम्मिश्रण हो गया है। रश्मि की कविताओं में कहीं कहीं निजी अनुभूतियों को भी प्रकट किया गया है।

'नीरजा' का प्रकाशन संवत् १९९१ में हुआ। 'नीरजा' में महादेवी कविताओं का परिपक्व रूप सामने आया। इनमें रहस्यवादी वना सुन्दर और तीव्र रूप में प्रकट हुई है।

'सांध्यगीत' का प्रकाशन संवत् १९९३ में हुआ।

'दीपशिखा' का प्रकाशन संवत् १९९७ में हुआ। 'सांध्यगीत' और पशिखा' की कविताओं में उनकी वेदना बड़े करुणाजनक रूप में ट हुई है। वेदना और दुःख की छाया महादेवी की सब रचनाओं ऊपर पड़ी हुई है। परन्तु उसका चरम विकास इन रचनाओं में कर हुआ है।

महादेवी के काव्य की विशेषताएं—महादेवी के काव्य की से बड़ी विशेपता यह है कि वह वेदना से भरा हुआ है। यह ना महादेवी की रचनाओं में सर्वत्र पाई जाती है। इस वेदना का त कोई अदृश्य प्रियतम है, जिससे मिलने के लिये कवयित्री व्याकुल यही विरह की व्याकुलता उनकी कविताओं में सरस रूप में प्रकट है।

महादेवी के काव्य की दूसरी विशेपता उसकी रहस्यवादी भावना महादेवी की रचनाओं में जिस प्रियतम के विरह का वर्णन है, अदृश्य रहस्यमय सत्ता है; बहुत कुछ वैसे ही जैसे मीरा के कृष्ण यह रहस्यवादी भावना महादेवी के काव्य को साधारण प्रेम काव्य अपेक्षा अधिक ऊंचा उठा देती है।

महादेवी के काव्य की तीसरी विशेपता यह है कि उसमें गीतात्म-ा बहुत अधिक है। महादेवी के गीतों से प्रभावित होकर आचार्य मचन्द्र शुक्ल ने उनके विपय में लिखा है; "गीत लिखने में जैसी फलता महादेवी जी को हुई है, वैसी और किसी को नहीं। न तो पा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह अन्यत्र कहीं मिलता है और हृदय की ऐसी भावभंगी। जगह जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी जना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"

महादेवी की कविता की गीतात्मकता का कारण यह भी है कि महादे को स्वयं संगीत का अच्छा ज्ञान है।

महादेवी की रचनाओं में जहां तहां दार्शनिक विचार भी प्रक हुए हैं और ये विचार मुख्यतया अद्‌वैतवादी हैं। अद्‌वैतवादी लो यह मानते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का ही स्वरूप है और कुछ नहीं ब्रह्म से भिन्न न कोई आत्मा है और न प्रकृति। ब्रह्म ही अपनी मा द्वारा प्रकृति के रूप में बदल जाता है और वही ब्रह्म माया द्वारा आत का रूप धारण कर लेता है। जब आत्मा के ऊपर से माया का आवर हट जाता है तो आत्मा फिर ब्रह्म स्वरूप में लीन हो जाता है। य अद्‌वैतवादी विचारधारा महादेवी के काव्य में मिलती है।

महादेवी की रचनाओं को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा सकता है।

(१) रहस्यवादी रचनाएं—इन रचनाओं में महादेवी अद्‌वैतवाद का चित्रण किया है। उन्हें उस रहस्यमय, सारे संसार संचालन करने वाली सुन्दर सत्ता का आभास मिल गया है और उससे एकाकार हो जाने को बेचैन हो उठी हैं। अद्‌वैतवाद ही का के जगत में आकर रहस्यवाद बन जाता है। महादेवी अपनी भावना द्वारा उस परम ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाना चाहती हैं; जै वह अपनी एक कविता में कहती हैं :

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
दूर तुम से हूँ सुहागिनी भी हूँ॥

(२) वेदनाजनित रचनाएं—ये रचनाएं महादेवी सर्वोत्तम रचनाएं समझी जा सकती हैं। उस अदृश्य प्रियतम के वि में व्याकुल होकर उन्होंने इस प्रकार की रचनाएं लिखी हैं। जैसे :

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें ढूंढूंगी पीड़ा॥

इस पीड़ा से महादेवी को बड़ा प्रेम है। इस पीड़ा को वह किसी तरह समाप्त होने देना नहीं चाहती। उसे बनाये ही रखना चाहती हैं, क्योंकि यह पीड़ा प्रियतम के विरह से उत्पन्न हुई है, इसलिये इस पीड़ा को बनाये रखने के लिये वह प्रिय से मिलने को भी तैयार नहीं है। कहती हैं :

मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।

या चिन्ता क्या है हे निर्मम बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरी ही पीड़ा का राज्य अंधेरा॥

(३) प्रकृति सम्बन्धी रचनाएं—महादेवी के काव्य में प्रकृति का वर्णन भी कई जगह मिलता है। परन्तु यह प्रकृति वर्णन शुद्ध प्रकृति वर्णन नहीं रहा, क्योंकि उन्होंने हर जगह या तो प्रकृति के ऊपर अपने भावों का आरोप कर दिया है या फिर प्रकृति में उस अदृश्य सत्ता—ब्रह्म—का स्वरूप प्रकट होता हुआ दिखाया है। फलस्वरूप प्रकृति के अपने मनोरम व्यापार पाठक के सम्मुख नहीं आते, बल्कि प्रकृति की आड़ में छायावादी और रहस्यवादी भावनाएं सामने आती हैं; जैसे :

फैलते हैं सान्ध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले।
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले॥

यद्यपि इन पंक्तियों में सन्ध्या के रंगीन मेघों और रात्रि के अंधकार का वर्णन है, परन्तु वह अन्धकार और वे रंगीन मेघ पाठक की आंखों के सामने न आकर लेखिका के मनोभाव ही सामने आते हैं। फलतः प्रकृति चित्रण गौण हो जाता है।

महादेवी की भाषा और शैली—महादेवी ने अपनी कविता के कला पक्ष को खूब संवारा है। असंयत, उच्छृङ्खल रचना उन्होंने कहीं नहीं की। उनके छन्द नियत और पूर्ण हैं। उनकी भाषा परिमार्जित और गठी हुई है। जगह जगह कविताओं में अलंकारों का प्रयोग किया गया है, पर वे अलंकार कविता के सौंदर्य को बढ़ाते ही हैं। उनकी

उपमाएं बहुत सुन्दर होती हैं जैसे, 'कनक से दिन, मोती सी रात'।

महादेवी की भाषा में पन्त की कोमलता और निराला की संगीतात्मकता इकट्ठी दिखाई पड़ती हैं। महादेवी की रचनाओं में प्रसादगुण उतना नहीं है, जितना माधुर्यगुण।

महादेवी ने भी लाक्षणिक प्रयोग बहुत किये हैं। भावों को उन्होंने जीवित बना दिया है; जैसे उनकी आहें मचलती हैं और इच्छाएँ सिहरती हैं। इस प्रकार के प्रयोग कहीं तो कविता का सौंदर्य बढ़ाने में सहायक हुए हैं और कहीं कहीं ऐसे ही प्रयोगों ने कविता का सौंदर्य घटा दिया है। अन्य छायावादी कवियों की भांति कहीं कहीं महादेवी के लाक्षणिक प्रयोग भी अपने अर्थ को स्पष्ट करने में असफल रहे हैं।

महादेवी की रचना का एक बड़ा दोष यह माना जाता है कि उनमें वेदना का अत्यधिक प्राधान्य है। सब जगह वेदना ही वेदना होने से कुछ नीरसता आ जाती है। कई जगह महादेवी की भाषा उनके भावों को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाती।

मीरा और महादेवी की तुलना—समानता—मीरा और महादेवी दोनों ही अपने युग की सर्वोत्तम कवयित्री हैं। दोनों की कविताओं में 'प्रेम की पीर' पाई जाती है। दोनों की कविताओं में स्त्री-सुलभ भावनाएँ बड़े मनोहारी और मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट हुई हैं। मीरा अपने 'गिरिधर गोपाल' से मिलने के लिए उतावली हैं, तो महादेवी अपने अज्ञात प्रिय से मिलने को विकल हैं। दोनों का प्रेम किसी सीमा तक अलौकिक कहा जा सकता है। दोनों की कविता संगीतमय है।

(२) मीरा ने प्रेम के आवेग में सामाजिक बन्धनों को तोड़ डाला है; पर महादेवी ने सामाजिक बन्धनों के अन्दर रहते हुए ही विरह सहा है। मीरा की व्यथा सब सीमाओं को तोड़ कर बही है; महादेवी की व्यथा संयत रही है।

(३) मीरा की कविताओं में विरह की विकलता और मिलन का माधुर्य दोनों दिखाई पड़ते हैं, जिससे उसके काव्य में धूप-छांह का सा सौन्दर्य आ गया है। महादेवी की कविता में मिलन के माधुर्य का बिलकुल अभाव है। वेदना की अविराम रट कहीं कहीं उबाने वाली हो गई है। महादेवी के प्रेम में विविधता नहीं; एकरसता है।

(४) मीरा का काव्य अनुभूति पर आश्रित है; महादेवी का अधिकतर कल्पना पर।

(५) मीरा की भाषा सरल, अपरिष्कृत और भावाभिव्यंजक है, पर महादेवी की भाषा परिष्कृत, अस्पष्ट और भावाभिव्यक्ति में अपेक्षाकृत कम समर्थ है।

(६) मीरा ने अपना प्रेम भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों के प्रति प्रकट किया है; महादेवी का प्रेम अज्ञात रहस्यमय प्रिय के प्रति ही है। मीरा की रचनाओं में हृदय पक्ष महादेवी की रचनाओं की अपेक्षा अधिक प्रकट हुआ है।

(७) संगीतात्मकता दोनों की रचनाओं में है, पर मीरा के पद शास्त्रीय लयों में बंधे हैं; महादेवी की रचनाएँ शास्त्रीय पक्के रागों में नहीं बंधी हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी के प्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। जिस समय छायावाद का बोलबाला था, उस समय पन्त जी को युगप्रवर्तक कवि और युगान्तरकारी कवि कहा जाता था। इस युग परिवर्तन अथवा युगप्रवर्तन से अभिप्राय यह था कि इन्होंने द्विवेदी युग की शुष्क और नीरस कविता के स्थान पर ललित मधुर शब्दों वाली कविता का प्रारम्भ किया था। उस समय पन्त जी की कोमलकान्त पदावली बहुत लोकप्रिय हुई थी। इस क्षेत्र में पन्त जी, प्रसाद, निराला और महादेवी एक ही ढंग के कवि थे।

जीवन-वृत्तान्त—पन्त जी का जन्म अल्मोड़ा की पहाड़ियों में कौसानी गांव में संवत् १९५७ में हुआ। इनके पिता का नाम पं० गंगादत्त और माता का नाम सरस्वती देवी था। पन्त जी बचपन से ही कविताप्रेमी थे। अल्मोड़ा की सुरम्य पर्वतमालाओं में जन्म लेकर और उन्हीं में पलकर आखिर वह काव्यप्रेमी होते भी क्यों न? प्रकृति के सौंदर्य ने पन्त जी के मन पर गहरा प्रभाव डाला है। उसने उनकी भावनाओं को बहुत सुकुमार बना दिया है।

पन्त जी को अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़ देनी पड़ी। सम्भवत

ा था। पन्त जी आकृति सुन्दर थी ही और उस पर बड़े-बड़े बाल
 से उन्हें देखकर लड़की होने का पूरा भ्रम हो जाता था। इसी
ह की सुकुमार भावनाओं में पन्त ने जीवन विताया। इसका फल
हुआ कि वह जनभीरु और एकान्तप्रिय हो गये। संघर्ष से वह
ही रहे।

पन्त जी ने सिनेमा के क्षेत्र में जाकर भी गीत इत्यादि लिखने का
र्य किया। परन्तु सिनेमा के लिये जैसे गीत और संवाद लिखने की
वश्यकता होती है, वैसे लिखने में पन्त जी असफल रहे; और दो
ल बाद ही उस क्षेत्र को छोड़ आए। आजकल पन्त जी रेडियो
भाग में सलाहकार हैं।

पन्त जी की रचनाएं—पन्त जी ने हिन्दी में काव्य, नाटक,
न्यास और कहानियां, सभी कुछ लिखा, परन्तु उनकी अधिक
सिद्धि उनकी कविताओं के कारण है। अन्य क्षेत्रों में उन्हें पर्याप्त
फलता नहीं मिली। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं:

(१) काव्य—उच्छ्वास, पल्लव, पल्लविनी, वीणा, ग्रंथि, गुंजन,
ान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाल।

(२) नाटक—परी, क्रीड़ा, रानी, ज्योत्स्ना।

(३) उपन्यास—हार।

(४) कहानी संग्रह—पांच कहानियां।

'मधुज्वाल' उमरखय्याम की अंग्रेजी में फिट्जजेरल्ड द्वारा अनू-
त रुबाइयों का हिन्दी में अनुवाद है।

पन्त जी की सबसे पहली रचना 'वीणा' है। इसमें इनकी
रम्भिक कविताएँ संगृहीत हैं। इन कविताओं पर बंगला साहित्य
ी छाप दिखाई पड़ती है। अधिकतर कविताएँ भक्ति और प्रकृति-प्रेम
म्बन्धी हैं।

'ग्रंथि' की रचना खंड काव्य के रूप में है। इसमें असफल प्रेम
ा चित्रण किया गया है। नायक नायिका सामाजिक बन्धनों के

कारण एक दूसरे से मिल पाने में असमर्थ रहते हैं। इसमें कथा बहुत शिथिल है।

'पल्लव' में आकर पन्त जी की प्रतिभा का अधिक विकास हो गया है। इसमें प्रेम और दार्शनिक विचारों की कविताएँ हैं। प्रकृति प्रेम की कविताएं तो पन्त जी की सभी रचनाओं में पाई ही जाती हैं।

'गुंजन' में चिन्तन-प्रधान कविताएँ अधिक हैं।

'ज्योत्स्ना' पन्त जी का एक भाव नाटक है, जिसमें इन्दु, पवन इत्यादि पात्र हैं और सारा नाटक कविता में लिखा गया है।

'युगान्त' और 'युगवाणी' में पन्त जी ने प्रगतिवादी रचनाएँ लिखने का यत्न किया है। इनमें पन्त जी ने वे बातें लिखने की चेष्टा की है, जो उनकी अपनी नहीं हैं; इसीलिए उनकी प्रगतिवादी रचनाएँ लोगों को आकृष्ट नहीं कर पाईं।

पन्त जी के काव्य की विशेषताएं—पन्त जी की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उनकी ललित और मधुर पदावली है। उनकी भाषा बहुत ही कोमल होती है। उसे पढ़ने और सुनने में आनन्द अनुभव होता है।

पन्त जी की कविता की एक और विशेषता उनकी सुन्दर कल्पनाएँ हैं। पन्त जी ने अनेक मनोहर कल्पनाएँ की हैं, जिनसे उनका काव्य बहुत रोचक बन गया है।

जैसे प्रभात आनन्द, स्फूर्ति और नई चेतना का प्रतीक है; आंसू दुःख का प्रतीक है; धूल तुच्छ वस्तुओं की प्रतीक है। इस शैली में इन भावों का उल्लेख न करके उनके लिए प्रतीक के रूप में निश्चित शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। इसी को लाक्षणिक प्रयोग भी कहते हैं, क्योंकि ये प्रतीक अपना अर्थ लक्षणा शक्ति की सहायता से ही प्रकट करते हैं। लक्षणाशक्ति के प्रयोग से काव्य का सौंदर्य बहुत बढ़ जाता है। पन्त जी की कविताओं में भी इन प्रतीकों या लाक्षणिक प्रयोगों से कविता का सौंदर्य बढ़ा है; पर कहीं-कहीं उनके ये प्रतीक दूर की कौड़ी बन गए हैं अर्थात् लक्षणाशक्ति द्वारा उनका अभीष्ट अर्थ प्रकट नहीं हो पाता। ऐसे स्थानों में पन्त जी की कविता जटिल और दुर्बोध हो गई है। कविता का अर्थ स्पष्ट न हो पाना या अर्थ कठिन होना कविता का दोष माना जाता है।

पन्त जी की कविताएं मुख्यरूप से कल्पना जगत की कविताएं हैं। वास्तविक जीवन से पन्त जी का काव्य बहुत दूर है। 'ग्राम्या' और ...वाणी' में उन्होंने यथार्थ-विषयक रचनाएं करने की चेष्टा की, ...तु उनमें उन्हें वैसी सफलता न मिली, जैसी उन्हें कल्पना-जगत् की ...ताओं में मिली है।

पन्त जी पर रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के ...निक विचारों का प्रभाव पड़ा है।

पन्त जी की काव्य प्रतिभा का विकास क्रम—पन्त जी ने ...नी कविता प्रकृति सौंदर्य के वर्णन से प्रारम्भ की। उसके बाद क्रमशः ...की कविताओं में प्रेम की भावना अधिक और अधिक बढ़ती गई। ...थे' में प्रेम के विरह पक्ष का वर्णन है। उसके पश्चात् 'पल्लव' में ...ते प्रेम, मानवीय प्रेम तथा दार्शनिक चिन्तन इकट्ठे दिखाई पड़ते ... 'गुंजन' में पहुंच कर पन्त चिन्तन-प्रधान हो गये हैं। 'युगान्त', ...वाणी' और 'ग्राम्या' में उन्होंने समाजवाद और गांधीवाद से

प्रेरित होकर प्रगतिवादी रचनाएं की हैं। प्रगतिवादी क्षेत्र में सफल न होकर वे फिर अपनी पुरानी धारा में ही लौट आये हैं और 'स्वर्णधूलि' तथा 'स्वर्ण किरण' इत्यादि संग्रहों में उन्होंने अपनी पुरानी शैली में भावनाप्रधान रचनाएं की हैं।

पन्त जी ने महात्मा गांधी के स्वर्गवास के पश्चात् कुछ कविताएं लिखीं, जो 'खादी के फूल' में बच्चन की कविताओं के साथ संगृहीत हैं; पर इन कविताओं में न तो पन्त जी की प्रतिभा का ही अच्छा रूप सामने आया है और न बच्चन की ही। ये कविताएं बहुत ही हल्के स्तर की हैं।

छायावादी कवियों में पन्त जी का स्थान—हिन्दी के छायावादी कवियों में पन्त जी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसाद, निराला और महादेवी की रचनाओं में रहस्यवाद छायावाद की अपेक्षा कहीं अधिक पाया जाता है। महादेवी तो मुख्यरूप से रहस्यवाद की ही लेखिका हैं। प्रसाद और निराला की कविताओं में भी दार्शनिक गम्भीरता अधिक है। विशुद्ध छायावाद की दृष्टि से पन्त जी इन सबसे आगे हैं। पन्त जी की कविताओं में दार्शनिक चिन्तन कम और कल्पना की सरसता अधिक होती है। छायावादी कवियों में प्रकृति का ऐसा मनोरम चित्रण अन्य किसी ने नहीं किया, जैसा पन्त जी ने किया है। क्योंकि पन्त जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं, इसलिये उन्होंने प्रकृति के कोमल और सुन्दर स्वरूप का ही चित्रण अधिक किया है। प्रकृति के भीषण तथा रौद्र रूप को देखने का या तो उन्हें अवसर नहीं मिला; और यदि अवसर मिला हो तो उसका मनोहारी चित्रण वे नहीं कर पाये। [illegible] कवि से प्रकृति के सभी रूपों का अनेकरूपी वर्णन की आशा की जाती है।

प्रकृति-प्रेमी कवि होने के नाते पन्त जी ने प्रकृति को अनेक रूपों में देखा है। कहीं प्रकृति को देख कर उनका मन प्रसन्न होता है और कहीं

प्रकृति उनके सुख दुख की संगिनी वन जाती है। वह भी चेतन मनुष्य की भांति ही हंसती और रोती है। कहीं उन्होंने प्रकृति को अपनी प्रियतमा के रूप में चित्रित किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी ने निम्नरूपों में प्रकृति का वर्णन किया है। (१) सुन्दर मनोहारी दृश्य के रूप में (२) सुख दुख अनुभव करने वाली चेतन सत्ता के रूप में (३) मनुष्य के सुख में सुखी और दुखी में दुखी होने वाली सहानुभूतिमय सत्ता के रूप में (४) अपनी प्रियतमा के रूप में।

प्रकृति में इस प्रकार विभिन्न रूपों में अपनी ही छाया का दर्शन करने के कारण वे छायावाद के उत्तम कवि माने जाते हैं।

पन्त जी की भाषा और शैली—पन्त जी की कविता का ाधे से अधिक सौंदर्य उनकी ललित और कर्ण मधुर भाषा में है। नकी भाषा सरल और माधुर्यगुण युक्त होती है। इसमें कर्णकटु शब्दों ा अभाव होता है और संयुक्त अक्षरों का प्रयोग यथाशक्ति कम ोता है। उनकी भाषा कलकल ध्वनि से वहते हुए झरने के समान मठास लिये होती है। वे यत्नपूर्वक ऐसे शब्दों का चुनाव करते हैं, जनसे मधुरता टपकी पड़ती हो।

परन्तु कहीं कहीं लाक्षणिक शब्दों का अत्यधिक प्रयोग होने से कविता का अर्थ जटिल और अस्पष्ट हो जाता है। पन्त जी के भाव कोमल होते हुए भी कई वार वहुत सूक्ष्म होते हैं, जिन्हें प्रकट कर ाने में भाषा असमर्थ रहती है। द्विवेदी युग की शुष्क भाषा में सरसता और कोमलता लाने का श्रेय छायावादी कवियों को है, जिनमें से न्त जी भी एक हैं। पन्त जी ने अधिकांश काव्य रचना मुक्तक रूप में की है। 'ग्रंथि' नामक काव्य में उन्होंने कथा अवश्य रखी है, पर न होने के वरावर है। इससे स्पष्ट है कि प्रवन्ध काव्य लिखने की

'निराला' जी को बाल्यकाल में बाकायदा विद्यालय में रहकर शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। बाद में भी इनकी रुचि शिक्षा सम्बन्धी उपाधियाँ प्राप्त करने की ओर नहीं हुई। जो कुछ भी अध्ययन इन्होंने किया, घर पर रहकर ही किया। परन्तु साहित्य रचना के लिए परीक्षाएँ पास करने की आवश्यकता नहीं होती।

'निराला' जी का सम्बन्ध रामकृष्ण मिशन से भी रहा है, और कुछ समय तक यह मिशन के मुखपत्र 'समन्वय' का सम्पादन भी करते रहे हैं। मिशन में रहने का फल यह हुआ कि आप पर रामकृष्ण परमहंस के दार्शनिक सिद्धान्तों की छाप पड़ गई है। दर्शन शास्त्र का आपने अध्ययन भी किया है।

'निराला' जी को विशाल तथा सुन्दर देह प्राप्त हुआ है। बचपन से ही उन्हें व्यायाम और संगीत इन दो वस्तुओं का शौक था। व्यायाम ने उनके शरीर को सुपुष्ट और सुन्दर बनाया; संगीत ने उनके मन और उनकी कलाकृतियों को। उनकी रचनाओं का प्राण उनका संगीत ही है।

सम्पन्न व्यक्तियों के लिए कठिन हो जाता है; फिर 'निराल
आर्थिक स्थिति तो बिलकुल साधारण थी। अपनी इस उ
कारण 'निराला' जी आर्थिक दुर्दशा के शिकार हो गये औ
जीवन उन्होंने 'मन के राजा, पर जेब के भिखारी' के रूप में
अन्त में दुश्चिन्ताओं से ग्रस्त होकर वह पागल से भी
'निराला' जी ने जीवन के दुःखमय पहलू को भी भली भांति
है। उन्होंने जीवन की विषमताओं को झेला है, पर यह नहीं क
सकता कि उन्होंने संघर्ष किया है। संघर्ष करने वाले विक्षिप्त नहीं
करते।

'निराला' जी की रचनाएँ—पुस्तकों की संख्या की दृ
निराला' जी ने बहुत साहित्य सृजन किया है। उन्होंने ५४ के
ग मौलिक और अनूदित रचनाएँ हिन्दी को दी हैं। कवि
न्यास, निबन्ध और कहानी, सभी क्षेत्रों में उन्होंने रचना की
की रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(क) काव्य—परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्त
गमा, बेला, नये पत्ते, अपरा, अर्चना।

(ख) कहानी-संग्रह—लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीवी।

(ग) उपन्यास—अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, उच्छृंखल,
चीटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली।

(घ) निबन्ध-संग्रह—प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-परिचय, प्रबन्ध-प्रतिभा,
वीन्द्र-कविता-कानन।

(ङ) रेखाचित्र—कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

इनके अतिरिक्त भी उन्होंने और कई छोटी मोटी पुस्तकें लिखी
और कुछ अनुवाद भी किये हैं।

निरालाजी का पहला कविता संग्रह 'अनामिका' था। इसी प्रथम
में निरालाजी ने तुकहीन मुक्त छन्द का प्रयोग किया था। इस
तुकहीन मुक्तक छन्द के प्रयोग को हिन्दी में बिल्कुल नई वस्तु माना

गया। 'अनामिका' में संगृहीत कविताएं शृङ्गार रस की हैं। कुछ कविताएं वीर रस की भी हैं। निरालाजी की संघर्ष की भावना इन कविताओं में स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

'अनामिका' के बाद की दूसरी रचना 'परिमल' है। 'परिमल' में निराला का दार्शनिक स्वरूप प्रकट हुआ है। 'परिमल' में कुछ कविताएं प्रकृति वर्णन सम्बन्धी हैं, परन्तु प्रकृति वर्णन की इन कविताओं में भी रहस्यवादी भावना का पुट भर दिया गया है। 'परिमल' निरालाजी की परिपक्व और सर्वोत्तम रचना मानी जाती है।

निरालाजी ने 'तुलसीदास' नाम का एक खण्ड काव्य भी लिखा है। इसमें सौ छन्द हैं; जिसमें तुलसीदास के विचित्र व्यक्तित्व का उद्‌घाटन किया गया है। तुलसीदास' निरालाजी की उत्कृष्ट काव्य रचना समझी जाती है। निरालाजी ने 'कुकुरमुत्ता', 'वेला' और 'नये पत्ते' नामक अपने कविता संग्रहों में प्रगतिशील रचनाएं लिखी हैं, जिनमें समाजवादी पक्ष का समर्थन और पूंजीवादी पक्ष का विरोध किया गया है। 'अपरा' और 'अर्चना' नामक कविता संग्रहों में इनकी रहस्यवादी कविताएं संगृहीत हैं।

निरालाजी के काव्य की विशेषताएं—निरालाजी की कविताओं की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनमें विद्रोह का स्वर प्रधान है। एक ओर तो उन्होंने पुराने ढंग की चली आ रही काव्य शैली से विद्रोह किया; द्विवेदी युग की शुष्क और इतिवृत्तात्मक कविता से विद्रोह किया; छन्दों से विद्रोह किया और तुकों के बन्धन को भी तोड़ दिया, इसके साथ ही उन्होंने पूंजीवादी भावना के प्रति विद्रोह करके शोषितों का समर्थन किया।

निरालाजी के काव्य की दूसरी बड़ी विशेषता उनकी दार्शनिकता है। उनकी कविताओं में दार्शनिक विचार बहुत अधिक पाये जाते हैं। अनेक स्थानों पर उनकी रचनाओं में काव्य का अंश कम रह जाता है और दार्शनिक विचार अधिक मुख्य बन जाते हैं। ये दार्शनिक

'रंगभूमि' उपन्यास में अपने समय में चल रहे राजनीतिक आन्दोलन का चित्रण किया गया है। इसका मुख्य नायक एक अन्धा सूरदास है, जो अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहता है। सामाजिक निन्दा की परवाह न करते हुए वह सत्य और न्याय का पक्ष लेता है। यह पात्र महात्मा गांधी के गुणों का प्रतीक मालूम होता है। रंगभूमि में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी तरह के पात्र हैं। इसमें समाज के उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग का चित्रण किया गया है।

'प्रेमाश्रम' में राजनीतिक समस्याओं का चित्रण करते हुए हिन्दू और मुसलमानों की आपसी फूट का वर्णन करते हुए उसे हटाने का यत्न किया गया है। देहातों तथा शहरों के जीवन में जो गहरी खाई बन गई है, उसका भी अच्छा चित्रण किया गया है। धर्म की आड़ में किये जाने वाले पाखंडों का भी भंडाफोड़ इस उपन्यास में है।

'गोदान' प्रेमचन्द जी का सबसे अच्छा उपन्यास माना जाता है। इसमें ग्रामीण जीवन की समस्याओं, ग्रामीणों की आकांक्षाओं और उन आकांक्षाओं के पूर्ण होने में उत्पन्न होने वाली बाधाओं का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है। 'गोदान' में देहाती जीवन के साथ साथ शहरी जीवन का भी चित्रण किया गया है, जिससे दोनों का भेद बहुत साफ दिखाई पड़ने लगता है। 'गोदान' में हमें भारतीय जीवन की अनेक समस्याएँ एक साथ सामने दिखाई पड़ती हैं। इनके चित्रण में प्रेमचन्द जी को विशेष सफलता मिली है। गोदान के पात्र कल्पित मालूम नहीं होते, बल्कि हमारे समाज के ही जीते जागते व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

'सेवासदन' उपन्यास में वेश्याओं की समस्याओं को उठाकर उसमें सुधार करने की आवश्यकता बताई गई है।

'प्रतिज्ञा' उपन्यास में विधवा विवाह के प्रश्न को लेकर विधवाओं की दुर्दशा, विधवाओं का विवाह और विधवा विवाह के प्रति समाज की प्रतिक्रियाओं का चित्रण किया गया है।

कहानियाँ, नारी जीवन की कहानियाँ, समर यात्रा, मानसरोवर, अग्नि-समाधि, कफन और शेष कहानियाँ।

नाटक—प्रेम की वेदी, कर्बला, संग्राम।

अनुवाद—सृष्टि का आरम्भ, फिसान-ए-आजाद, सुखदास, अहंकार, हड़ताल, चाँदी की डिबिया, न्याय।

बालोपयोगी—मनमोदक, कुत्ते की कहानी, जंगल की कहानियाँ, टालस्टाय की कहानियाँ, दुर्गादास, राम चर्चा।

निबन्ध—कुछ विचार, कलम, तलवार और त्याग, म० शेखसादी।

पत्र—हँस, जागरण।

प्रेमचन्द जी ने अपने समय के समाज को भली भांति देखा था। वे ऐसी परिस्थितियों में रहे थे कि समाज की दुर्दशा, कुरीतियाँ और उनके कारण उत्पन्न होने वाली बुराइयों को खूब पास से देखने का अवसर उन्हें मिला। इसलिए अपने उपन्यासों में उनका चित्रण वे बहुत कुशलता से कर सके।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का परिचय—प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में प्रेमाश्रम, सेवासदन, रंगभूमि, गबन और गोदान बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। अपने सभी उपन्यासों में उन्होने विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने अनमेल विवाह की समस्या को चित्रित किया है और बताया है कि इसके परिणाम कैसे भयंकर होते हैं। निर्मला कम आयु की लड़की है। वह बहुत ही अच्छे स्वभाव की है। परन्तु उसका विवाह एक बुड्ढे व्यक्ति से हो जाता है, जिससे धीरे धीरे निर्मला का स्वभाव खराब और खराब होता जाता है और विवाह का परिणाम सारे परिवार के लिए अत्यन्त दुःखजनक होता है। निर्मला की छोटी बहन का विवाह एक तरुण से होता है और वह सुखी रहती है।

सफलता नहीं मिली। फिल्म जगत् के रंग ढंग भी इन्हें पसन्द नहीं थे। इसलिए इन्होंने जल्दी ही उस काम को छोड़ दिया। संवत् १९९३ में प्रेमचन्दजी का स्वर्गवास हो गया।

प्रेमचन्द जी ने अपने जीवन का काफी बड़ा भाग दरिद्रता से संघर्ष करके बिता दिया। बचपन में इनके पिता इन्हें कभी बारह आने से अधिक की जूती न पहना सके। जब इनकी आयु आठ वर्ष की थी, तभी इनकी माता का देहान्त हो गया था। उसके बाद इनके पिता ने दूसरा विवाह किया ; और जैसा स्वाभाविक ही है, प्रेमचन्द जी को भी अपनी विमाता के कारण काफी कष्ट सहने पड़े।

प्रेमचन्द जी का पहला विवाह इनसे भी बड़ी आयु की एक कन्या से हुआ था। उसके साथ प्रेमचन्द जी का मन न मिला। इसलिए उसे छोड़कर इन्होंने दूसरा विवाह एक बालविधवा शिवरानी देवी से किया। यह विवाह सफल विवाह रहा।

सम्वत् १९८८ में प्रेमचन्द जी ने बनारस में अपना एक प्रेस खरीद लिया था। उसी में इनके पत्र 'हंस' और 'जागरण' छपते थे। इनके कुछ उपन्यास भी इसी प्रेस में छपे।

प्रेमचन्द जी की रचनाएं—प्रेमचन्द जी ने उपन्यास, कहानी, नाटक और निबन्ध इत्यादि अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखीं। इन्होंने कई अच्छी पुस्तकों के अनुवाद भी किये। परन्तु प्रेमचन्द जी की प्रतिभा का सबसे अच्छा स्वरूप उनके उपन्यासों और कहानियों में प्रकट हुआ है। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

उपन्यास – प्रेमा, वरदान, प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि, निर्मला, गोदान, कायाकल्प, मंगलसूत्र।

कहानी—सप्तसरोज, नवनिधि, प्रेम पूर्णिमा, प्रेम पचीसी, प्रेम तीर्थ, प्रेम द्वादशी, प्रेमप्रसून, प्रेरणा, पाँच फूल, ग्राम्य जीवन की

खराब थी। कुछ दिन बाद इन्हें एक स्कूल में १८ रुपये मासिक पर अध्यापक का कार्य मिल गया। पर यह काम उन्होंने थोड़े ही दिन किया, क्योंकि उन्हें सब डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स का पद मिल गया। स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण यह नौकरी उनसे देर तक न निभी और वह फिर अध्यापक बन गये।

प्रेमचन्दजी को उर्दू के उपन्यास पढ़ने का बड़ा चाव था। धीरे-धीरे उन्हें लिखने का भी शौक हो गया। पहले वे उर्दू में लिखा करते थे। उस समय उनका नाम धनपतराय था। बाद में उनकी रुचि हिन्दी लिखने की ओर हुई। उर्दू से हिन्दी की ओर आने का फल यह हुआ कि इनको हिन्दी भाषा में वही सरलता, प्रवाह और मंजापन आ गया, जो उर्दू भाषा की विशेषता है।

संवत् १९६५ में उनकी कहानियों का पहला संग्रह उर्दू में 'सोजे वतन' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें इनका देशप्रेम प्रकट होता था। क्योंकि प्रेमचन्दजी सरकारी नौकरी में थे, इसलिए इन्हें सरकार की ओर से आदेश हुआ कि ये बिना पहले अनुमति लिए अपनी कोई रचना लिख कर प्रकाशित न करें।

१९२०-२१ के गांधीजी के असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में प्रेमचन्दजी ने सरकारी नौकरी छोड़ दी। कुछ दिन तक इन्होंने कानपुर के मारवाड़ी विद्यालय और काशी विद्यापीठ में भी अध्यापन का कार्य किया। बाद में इन्हें राष्ट्र सेवा की धुन लगी और इन्होंने 'हंस' तथा 'जागरण' नामक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। प्रेमचन्दजी ने लिखना कभी बन्द नहीं किया था। इसी का फल यह हुआ कि धीरे-धीरे उनकी ख्याति सब ओर फैल गई। अपने अखबारों में इन्हें बहुत नुकसान हुआ। उस समय इनके उपन्यासों की लोकप्रियता से प्रभावित हो कर बम्बई की एक फिल्म कम्पनी ने इन्हें आठ हजार रुपये वार्षिक पर अपने यहाँ बुला लिया। परन्तु फिल्म क्षेत्र में प्रेमचन्दजी को

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द जी हिन्दी के उपन्यास सम्राट् कहे जाते हैं। वस्तुतः प्रेमचन्द जी हिन्दी के पहले उपन्यास लेखक थे, जिन्होंने सामाजिक उपन्यास लिख कर जनता में इतनी अधिक ख्याति प्राप्त की। यद्यपि प्रेमचन्द जी से पहले भी हिन्दी में अनेक उपन्यास लिखे गये और उनमें से 'चन्द्रकान्ता सन्तति' जैसे कुछ उपन्यास तो इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि केवल उन्हें पढ़ने के लिए ही बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी; परन्तु उन उपन्यासों का साहित्य में ऊंचा स्थान नहीं समझा जा सकता। प्रेमचन्दजी के उपन्यास साहित्यिक दृष्टि से भी उत्कृष्ट थे। इनमें अपने समय के समाज की समस्याओं का जीता-जागता चित्रण था। इसीलिए उनकी लोकप्रियता दिनों दिन बढ़ती गई।

जीवन वृत्तान्त—प्रेमचन्दजी का जन्म संवत् १९३७ में बनारस जिले के लमही नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम अजायबराय और माता का नाम आनन्दीदेवी था। इनकी आर्थिक दशा अच्छी न थी। प्रेमचन्दजी को बचपन में ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनके पिता डाकखाने में २० रुपये वेतन पर काम करते थे। प्रेमचन्दजी का विवाह १५ वर्ष की आयु में ही हो गया था। उस समय यह नवीं कक्षा में पढ़ते थे। क्वीन्स कालेज में यद्यपि उन्हें फीस नहीं देनी पड़ती थीः फिर भी उन्हें अपना खर्चा चलाने के लिए ट्यूशन करके धन उपार्जन करना पड़ता था। मैट्रिक पास करने के बाद वह आगे इसलिए न पढ़ सके, क्योंकि आर्थिक दशा बहुत

ने ही जहाँ तहाँ अव्ययों और क्रियापदों का लोप कर दिया है जिससे भाषा अस्पष्ट और अर्थ दुर्बोध हो गया है। इन दोनों ने सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग किये हैं। पर कहीं कहीं ये लाक्षणिक प्रयोग दूर की कौड़ी बन गये हैं, जिससे काव्य का सौंदर्य किरकिरा हो गया है।

दोनों की कविताओं में कल्पना की ऊँची उड़ान और भाषा की संगीतात्मकता पाई जाती है।

भिन्नता——जैसे पन्तजी कोमल स्वभाव और सुकुमार प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं, उसी तरह उनकी कविता में भी कोमलता अधिक है। निराला जी विद्रोही स्वभाव के व्यक्ति हैं इसलिए उनकी कविता में अक्खड़ता और ओज अधिक है।

निराला ने अतुकान्त और मुक्त छन्द में कविताएं लिखी हैं, पर पन्त जी ने अधिकांश रचनाएं बंधे छन्दों में की हैं। मुक्त छन्दों के लेखन में उन्हें सफलता नहीं मिली।

पन्त जी में प्रकृति प्रेम अधिक पाया जाता है; निरालाजी में दार्शनिकता अधिक है। निराला जी की कविता पन्त की कविता की अपेक्षा अधिक दुर्बोध है।

पन्त जी मुख्यतया छायावादी कवि हैं और निराला मुख्यतया रहस्यवादी कवि हैं।

निराला जी की कविता का कला पक्ष उपेक्षित है। पन्तजी ने कविता के भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों को ही संवारा है।

पन्त जी को खण्ड काव्य लिखने में सफलता नहीं मिली परन्तु निराला का खण्ड काव्य 'तुलसीदास' उत्तम रचना है।



कहीं नहीं मिलता। निराला जी की वीर रस पूर्ण कविताएँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं।

निराला जी की भाषा और शैली—निराला जी की भाषा और शैली निराली है। उन्होंने परम्परागत शैलियों को छोड़कर नई शैलियाँ अपनाई हैं। उन्होंने तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं। इसी प्रकार उनके छन्द भी निश्चित मात्रा वाले और अनिश्चित मात्रा वाले दोनों प्रकार के हैं। उन्होंने मुक्त छन्द का भी व्यवहार खूब किया है। निराला जी की कविताओं में गेयता का गुण बहुत अधिक होता है। कई जगह गीतात्मकता को बनाये रखने के लिए निराला जी अर्थ का भी बलिदान कर देते हैं। निराला जी ने कुछ गजलें भी लिखी हैं।

निराला जी की भाषा पर बंगला भाषा का प्रभाव बहुत अधिक है: उन्होंने समासयुक्त भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द बहुत पाये जाते हैं। कई जगह उन्होंने अव्ययों और क्रिया पदों का लोप कर दिया है, जिससे उनके वाक्य अधूरे रह गये हैं और उनका अर्थ निकाल पाना कठिन हो जाता है।

निराला जी की भाषा में लाक्षणिक प्रयोग पन्त की रचनाओं की अपेक्षा कम पाये जाते हैं। निराला जी की भाषा और शैली का प्रधान गुण उसकी स्वच्छन्दता है।

पन्त और निराला जी की तुलना—समानता—पन्त और निराला दोनों ही छायावादी और रहस्यवादी कवि हैं। इन दोनों पर बंगला साहित्य का प्रभाव है। दोनों ने भाषा को मधुर बनाने का यत्न किया है। इन दोनों ही कवियों पर स्वामी विवेकानन्द के अद्वैतवादी विचारों तथा रवि बाबू के रहस्यवादी काव्य का प्रभाव पड़ा है।

दोनों की भाषा पर बंगला प्रभाव होने से उनकी रचनाओं में बंगला भाषा के जहाँ गुण आ गये हैं, वहाँ दोष भी आ गये हैं। दोनों

विचार मुख्य रूप से विवेकानन्द की अद्वैतवादी धारा के विचार होते हैं।

निराला जी ने कुछ गीत भी लिखे हैं। उनके गीतों की विशेषता केवल इतनी है कि वे मधुर लय में गाये जा सकते हैं। निराला के गीतों में भाव सौंदर्य और अर्थ सौंदर्य बहुत कम होता है। कविता की दृष्टि से उनके गीतों का मूल्य कम है, संगीत शास्त्र की दृष्टि से शायद उन्हें उपयोगी समझा जा सके।

निराला जी ने कुछ रचनाएं हास्य और व्यंगपूर्ण भी की हैं। इन रचनाओं में अंग्रेजी सभ्यता पर, अंग्रेजी नकल पर चलने वाले भारतीयों पर तथा अन्य कई सामाजिक पाखण्डों पर व्यंग किये गये हैं। एक जगह उन्होंने एक ढोंगी पुजारी का चित्रण किया है, जिसने बन्दरों को तो मालपुए खिलाये, पर भूखे भिखारी को कुछ न दिया।

निराला जी ने कुछ रचनाएं प्रगतिवादी भी लिखी हैं। इन प्रगतिवादी रचनाओं में उन्होंने पत्थर कूटने वाले मजदूरों तथा अन्य शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। निरालाजी की प्रगतिवादी रचनाएँ पन्त जी की प्रगतिवादी रचनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी बन पड़ी हैं।

इस प्रकार निराला जी की कविताओं को पाच भागों में बांटा जा सकता है। (१) दार्शनिकताप्रधान रचनाएँ (२) हास्य और व्यंग सम्बन्धी रचनाएँ (३) प्रगतिवादी रचनाएँ (४) गीतात्मक रचनाएँ और (५) अलंकारप्रधान रचनाएँ।

उनकी अलंकारप्रधान रचनाओं में 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' इत्यादि कविताओं को गिना जा सकता है। यद्यपि इन कविताओं में अलंकारों का प्रयोग किया गया है, परन्तु अलंकारों का खिलवाड़ करने की चेष्टा नहीं की गई।

निराला जी ने शृंगार और वीर दोनों ही रसों में कविताएँ लिखी हैं। उनका शृंगार बहुत मर्यादित है। उनकी रचनाओं में नग्न शृंगार

प्रेमचन्द जी के साहित्य की विशेषताएँ—जिस प्रकार राष्ट्रीय कविताएँ लिखने वाले कवि राष्ट्र कवि कहलाते हैं उसी प्रकार यदि राष्ट्रीय भावनाओं के साथ चलने वाले और राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण करने वाले उपन्यासकार को राष्ट्रीय उपन्यासकार कहा जाय, तो प्रेमचन्दजी भारतवर्ष के राष्ट्रीय उपन्यासकार हैं। उनकी रचनाओं में हमें देश की प्रायः सभी महत्वपूर्ण समस्याओं का चित्रण मिलता है। क्या अछूतोद्धार, क्या विवाह विवाह, क्या स्त्री-शिक्षा और क्या राजनीतिक दासता से मुक्ति पाने का प्रयत्न, सभी का चित्रण उन्होंने बड़े उत्साह से किया।

प्रायः हिन्दी के साहित्यकार शिक्षित वर्ग के साथ रहे हैं और उनका साहित्य देश के उच्च वर्ग का चित्रण करता रहा है, परन्तु प्रेमचन्दजी ने अपनी रचनाओं में देश की देहाती जनता की समस्याओं का चित्रण अधिक मनोयोग से किया है। देश के किसान और जमींदारों के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या उनके उपन्यासों का विषय रही है। प्रेमचन्द जी जनता के कलाकार हैं।

साहित्य के क्षेत्र में दो विचारधाराएं चलती हैं। एक प्रकार के लेखक कला को कला के लिए मानते हैं और दूसरे कला को जीवन के लिए। पहले प्रकार के लेखकों का उद्देश्य ऐसी रचना लिखना होता है जिस से पढ़ने वालों को आनन्द आये, भले ही उसका प्रभाव समाज पर बुरा पड़ता हो उनका कथन है कि कलाकार उपदेशक या समाजसुधारक नहीं होता।

परन्तु दूसरे प्रकार के कलाकार यह मानते हैं कि लेखक का उद्देश्य केवल जनता का मनोरंजन करना ही नहीं, बल्कि उसको अच्छे मार्ग पर ले चलना भी है। लेखक में यह शक्ति होती है कि वह समाज को सुधार या बिगाड़ सके। ऐसी हालत में लेखक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह समाज को सुधारने वाली ही रचनाएं

लिखे, बिगाड़ने वाली नहीं। प्रेमचन्दजी इसी मत के समर्थक
उनकी रचनाओं में सब जगह आदर्शवाद और समाज सुधार की
मिलती हैं। यदि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' ने देश
राजनीतिक आन्दोलन में कुछ योग दिया है, तो प्रेमचन्द जी
उपन्यासों ने उससे कहीं अधिक योग दिया है। ज्यों-ज्यों शिक्ष
प्रचार गाँवों में बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों प्रेमचन्दजी की लोकप्रि
बढ़ती जा रही है; क्योंकि प्रेमचन्द जी के साहित्य का जिन लोगं
सब से अधिक सम्बन्ध है, वे गाँवों के ही निवासी हैं।

प्रेमचन्द जी को अपने उपन्यासों की कथावस्तु गढ़ने में
कुशलता प्राप्त थी। उनके उपन्यास इतने रोचक हैं कि एक बार
कर देने पर पाठक उन्हें बिना पूरा समाप्त किये छोड़ना ही
चाहता। कथा आगे बढ़ते हुए इस प्रकार फैलती जाती है कि पाठव
उत्सुकता लगातार बढ़ती ही जाती है और वह यह जानने को उ
रहता है कि अब आगे क्या होगा।

प्रेमचन्द जी ने अपने पात्रों के चरित्र चित्रण भी बहुत अच्छे
हैं। उनके पात्र कठपुतली से प्रतीत नहीं होते, जो लेखक के हाथ
नाच रहे हों, बल्कि जीते जागते हमारे समाज के ही ऐसे व्य
प्रतीत होते हैं, जिन्हें मानो हम जानते हों।

प्रेमचन्द जी के पात्रों की एक और बड़ी विशेषता यह है कि
पात्र मनुष्य के गुणों और दोषों से युक्त होते हैं। मनुष्यों की दु
ताएं उनमें होती हैं। प्रलोभन सामने आने पर वे पतित भी हो
हैं। परन्तु मनुष्य में एक स्वाभाविक गुण यह भी होता है कि
अच्छा बनना चाहता है। इसलिए प्रेमचन्दजी के पात्र भी अ
बनने का यत्न करते और यत्न करते करते वे अन्त में अच्छे
कर ही रहते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्दजी के पात्र अधिक स्वाभा
प्रतीत होते हैं। प्रत्येक पात्र का सुधर जाना कहीं-कहीं अखरता भं

रन्तु आदर्शवादी लेखक का काम इसके बिना चल भी नहीं
कता।

भक्ति के क्षेत्र में जो स्थान तुलसीदास का है और आधुनिक
वियों में जो स्थान मैथिलीशरण गुप्त का है, उपन्यासकारों में वही
ान प्रेमचन्दजी का है।

प्रेमचन्दजी ने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं और कहानियों के
त्र में भी उन्हें वैसी ही सफलता मिली है, जैसी उन्हें उपन्यासों में
ली है। प्रेमचन्दजी की कहानियों का हिन्दी साहित्य में बहुत ऊंचा
ान है। इन कहानियों में भी वे अधिकतर आदर्शवादी ही रहे हैं।
हानी कला की दृष्टि से भी प्रेमचन्दजी की कहानियाँ उच्चकोटि की
ानी जाती हैं।

प्रेमचन्दजी ने अपने सारे साहित्य में सत्य और न्याय की विजय
था पाप और अन्याय की पराजय होती हुई प्रदर्शित की है।

इन सब गुणों के होते हुए प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में थोड़ा सा
प भी है। उनकी आदर्शवादिता कहीं-कहीं कला पर बोझ भी बन गई
। सब जगह सब पात्रों का सुधर कर पुण्यात्मा बन जाना भी अस्वा-
ाविक प्रतीत होता है, जो संसार में सर्वत्र होता दिखाई नहीं
ड़ता।

कहीं-कहीं प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में कथोपकथन बहुत लम्बे
ौर उपदेशात्मक हो गये हैं। कई जगह इन कथोपकथनों में प्रेमचन्द
ी लम्बा निबन्ध या उपदेश लिखना शुरू कर देते हैं। कहा जाता है
ि यदि उनके उपन्यासों में से कई पृष्ठ के पृष्ठ भी निकाल दिये जायं
भी उपन्यासों की रोचकता और सौंदर्य में कोई कमी न आयेगी।
े रचना का दोष ही समझना चाहिए। प्रेमचन्दजी ने अनेक स्थानों
र ये लम्बे-लम्बे उपदेशात्मक कथोपकथन अपने उपन्यासों की पृष्ठ
ख्या बढ़ाने के लिए लिखे हैं।

प्रेमचन्दजी की भाषा——प्रेमचन्दजी की भाषा सरल, परिमार्जित, प्रवाहपूर्ण हिन्दी है। प्रेमचन्दजी की भाषा का सब से बड़ा गुण स्वाभाविकता और सरलता है। प्रेमचन्द जी ने कृत्रिम भाषा कहीं नहीं लिखी। मुहावरों और कहावतों का प्रयोग कर के उन्होंने भाषा में जान डाल दी है। कहीं-कहीं ग्रामीण पात्रों से उन्होंने ग्रामीण भाषा भी बुलवाई है। विद्वान् पात्र के मुख से परिष्कृत, संस्कृत शब्दों से युक्त भाषा तथा अनपढ़ के मुख से गंवारू भाषा बुलवाना ही वह उचित समझते थे और वह स्वयं दोनों तरह की भाषा सफलतापूर्वक लिख सकते थे।